UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180627

UNIVERSAL
LIBRARY

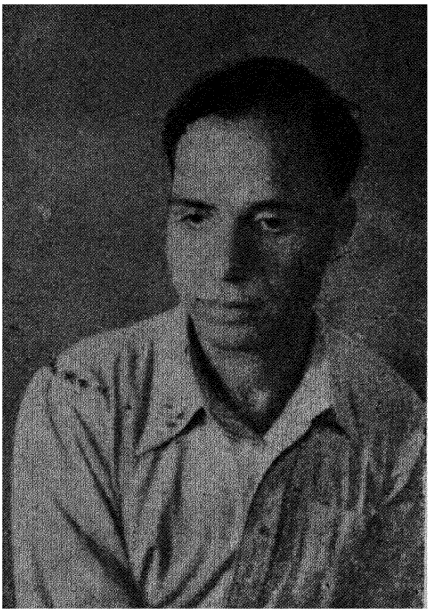

[पुस्तक के लेखक]

समर्पण—

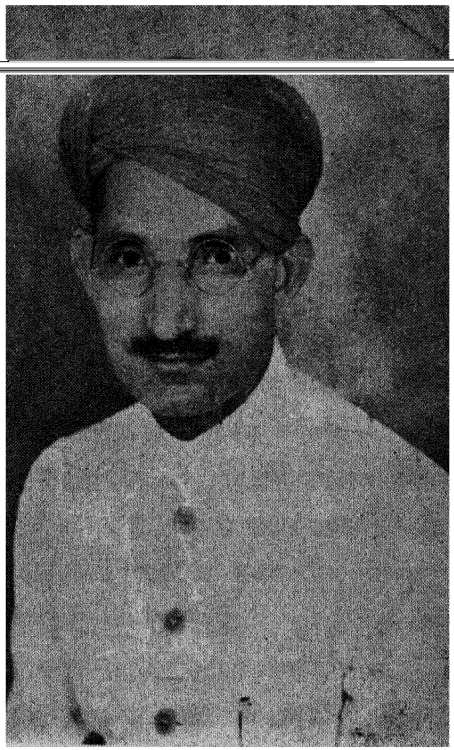

श्रीयुत् पं० लक्ष्मीलालजी जोशी,
एम. ए., एल्-एल्. बी.
को सादर

प्रकाशकीय निवेदन

श्रीयुत् सन्हैयालाल ओझा एम. ए., साहित्यरत्न द्वारा णीत काव्य-पुस्तक "तुलसीदास" का प्रकाशन 'साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर के "नव साहित्य-सृजन विभाग" की ओर से किया जा रहा है। श्री ओझाजी की यह पुस्तक साहित्य-संस्थान को प्रकाशन के लिये तीन-चार वर्ष पूर्व मिल चुकी थी किन्तु अनेक कठिनाइयों, संघर्षों और संकटों के कारण आज से पूर्व इसके प्रकाशन कार्य को हाथ में नहीं लिया जा सका। साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ के सम्मुख।यों तो अनेक कठिनाइयाँ थी किन्तु सब से बड़ी कठिनाई आर्थिक रही। आज भी संस्थान भयंकर आर्थिक संकट से गुजर रहा है। प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन भी इसलिये सम्भव हो सका है कि इसका समस्त व्यय उदयपुर के प्रसिद्ध और उदार श्रीयुत शिवदानसिंहजी, महाराज शिवरती ने प्रदान करने की अनुकम्पा की है। इस योग्य और उदार सहायता के लिये संस्थान सदैव कृतज्ञ रहेगा। यों श्री शिवदानसिंहजी साहित्य-संस्थान की प्रबन्ध-समिति के सक्रिय और प्रभाव-शाली सदस्य हैं। संस्थान को भविष्य में भी आपसे बड़ी आशायें हैं।

"तुलसीदास" ब्रज भाषा में रचा गया खण्ड काव्य है। यों आज ब्रज भाषा का युग समाप्त प्रायः है लेकिन "तुलसी दास" को पढ़ कर आपको लगेगा कि आज भी ब्रज भाषा के काव्य में कितनी संजीवनी शक्ति और कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति हो सकती है! "तुलसीदास" में आपको तुलसी और उनकी प्रियतमा रत्नावली के मनोभावों का सुन्दर एवं सजीव चित्रण मिलेगा। प्रस्तुत पुस्तक के प्रणेता का राष्ट्र भाषा हिन्दी और ब्रज भाषा—दोनों पर समान रूप से अधिकार है। आपकी कविताओं को सुन कर प्रसिद्ध साहित्य-सेवी और "कर्मवीर" के सम्पादक श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने भविष्यवाणी की थी कि "आप एक दिन भारत के उत्कृष्ट कवियों में होंगे।" श्री माखनलालजी का कथन कितना सत्य सिद्ध हुआ है—यह इस पुस्तक से प्रमाणित हो जायगा। यों तुलसीदासजी के जीवन में अनेक मार्मिकस्थल आये हैं किन्तु प्रस्तुत पुस्तक में जिस घटना को चुना है, वह अतीव हृदयस्पर्शी है! पुस्तक भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से कैसी बन पड़ी है, यह तो पुस्तक पढ़ने से ही ज्ञात होगा।

पुस्तक की छपाई, सफाई और प्रूफ संशोधन में जहाँ तक हो सका है, सावधानी बरती गई है फिर भी कुछ अशुद्धियाँ रह ही गई हैं, उनके लिये शुद्धि-पत्र जोड़ दिया गया है। इससे आशा है पाठकों की कठिनाई कम हो जायगी। पुस्तक की भाषा ब्रज है, इस कारण कठिन शब्दों के अर्थ तथा कहीं २

पंक्तियों के भावार्थ भी पीछे दे दिये गये हैं। इससे पुस्तक को समझने में अधिक कठिनाई नहीं होगी।

आशा है, प्रस्तुत पुस्तक को अपनाकर पाठक संस्थान को अधिक साहित्य-सेवा करने के लिये प्रोत्साहित करेंगे।

विक्रम सं० २००६
सन् १९५२

गिरिधारीलाल शर्मा
मन्त्री—
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर।

श्रीमान् महाराज साहब शिवरती

श्री शिवदानसिंहजी

महाराज शिवदानसिंहजी मेवाड़ के प्राचीन राजवंशीय घराने के प्रमुख भाइयों में से एक हैं— शिवरती का परगना आपकी जागीर में है। क्षत्रियोचित सभी उच्च गुण आप में विद्यमान हैं। हिन्दी, संस्कृत, गुजराती एवं अंग्रेजी का अच्छा अभ्यास है, पुराण, धर्म, नीति, भक्ति और योग शास्त्र के

आप अच्छे वेत्ता हैं। सत्संग और काव्य में आपकी पूर्ण रुचि है। खान पान और रहन सहन आदि सात्विक ही रखते हैं। सर्वोदय नामक एक पुस्तकालय का संग्रह भी अपने यहाँ कर रखा था—उसे आपने साहित्य संस्थान को भेंट कर दिया है। भारतीय संस्कृति के विकास और शान्ति आन्दोलन में आपका पूर्ण विश्वास है। अपनी जागीर से निजी व्यय में तनिक भी व्यय नहीं करते। स्वयं की कृषि से ही अपना जीवन यापन करते हैं। भारतवर्ष के लगभग सभी तीर्थों का आपने भ्रमण किया है। राजकार्य के संचालन का आपको एक कुशल अनुभव है। भूमि निर्धारण कार्य (बन्दोबस्त) सर्व प्रथम आपने अपनी जागीर में प्रारम्भ करवाया और बैठ-बेगार को बन्द करने में सरकार का हाथ बटाया और भी अनेकों समाज सुधार के कार्य किये। आदिवासी मण्डल, द्वितीय विश्व-युद्ध की मेवाड़ राज्य की कमिटी की अध्यक्षता, मेवाड़ सरकार की रंग निवास सभा (हाई कोर्ट) के न्यायसदस्य, वाल्टर कृत राजपूत हित कारिणी सभा और मेवाड़-रेवेन्यू अपील बोर्ड के मेम्बर रह चुके हैं। उदयपुर के समीप तीतरड़ी नामक अपने ग्राम में सीतारामजी की मूर्ति की प्राचीन मन्दिर में प्रतिष्ठा करवाई। आप पर राजर्षि महाराज चतुरसिंहजी का व्यापक प्रभाव है। आपने औषधालय, पाठशालायें और सदाव्रत आदि कई सत्कार्य प्रारंभ किये। आपने दो विवाह किये। अपनी सन्तानों को आप अच्छी शिक्षा देने में संलग्न हैं।

पूज्य विनोबाजी के भूदान यज्ञ में आपने १०० बीघा भूमि दान की और उसमें सक्रिय योग दे रहे हैं। राजस्थान विधान सभा के आप खमनोर निर्वाचन क्षेत्र के निर्वाचित सदस्य हैं। सरकार की पंचवर्षीय योजना और भारत-सेवक-समाज के काम में आप सक्रिय योग दान कर रहे हैं। आप सदैव सत्कार्यों में संलग्न रहते हैं।

साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ की प्रबन्ध-समिति के आप प्रभावशाली सदस्य हैं और इसके विकास एवं निर्माण कार्य में सतत प्रयत्न शील हैं।

———

आत्म-शीलन

साहित्य का मापदण्ड है जीवन, और जीवन का मापदण्ड है प्रकृति की वह चेतन-सत्ता जो उसके जड़त्व पर प्रतिदिन अधिकार करती जा रही है। इसी चेतन-सत्ता का विकास हमारी सभ्यता का विकास है, इसी की पुण्य प्रतीति का नाम मानवता है, असीम अनुभूति का अध्यात्म और रागात्मक-अभिव्यक्ति का काव्य ! — प्रकृति की जड़ता पर अधिकार की कामना से उत्पन्न मानव की अमर-जिगीषा जो हृदय-राग के पंखों पर चल कर अवतीर्ण होती है, वह है काव्य की उद्भावना ! असीम-अनुभूति चेतन-सत्ता का एक आध्यात्मिक पहलू है, और उसकी रागात्मक अनुभूति, काव्य, दूसरा भौतिक पहलू है !

वस्तुतः अनुभूति और अभिव्यक्ति में जिस मात्रा में अन्तर है, वही अन्तर अध्यात्म तथा भौतिक गुणों में है। अध्यात्म जीवन की गहराई में से पैदा होता है. सच्चे अध्यात्म को तो अभिव्यक्ति मिलती ही नहीं ! अभिव्यक्ति पैदा होती है कोलाहल-पूर्ण जीवन के ऊपरी सतह पर, जो कवच के समान शस्त्रों से जर्जरित होकर भी भीतर की रक्षा करता है ! अध्यात्म

मनन की कला है, उससे भी परे रमण की कला है; उसमें अन्तःपुर का सौंदर्य है, केलि-विलास है, हृदय गुहा की मनोरम शान्ति है, अनिर्वचनीय ब्रह्मानन्द है, उसमें एक घुटन भी है, गिरा-गोतीत होने से एक विवशतापूर्ण-बाल-सुलभ औत्सुक्य भी है, जो कभी-कभी परदे के रन्ध्र से बाहर की ओर झाँक उठता है, बाहर से रंगीन काँच पर हिलती हुई केवल छायाकृति ही दिखाई देती है। हमारी विवशता न केवल भीतर की कुढ़न की प्रतिक्रिया है, न केवल दृश्य की, अपितु दर्शक की कुढ़न की भी है! अनुभूति वहाँ निश्शेष हो जाती है!

जीवन के शल्क पर यह बात नहीं। पर्वताकार भयंकर तरंगों के संघर्ष में विभीषिका है, ताण्डव है, वहाँ स्मशानचारी रुद्र नाचते हैं, वहाँ पर जीवन का भयंकर मंथन है। किन्तु वहीं पर आघातों में बिजली चमकती है, मंथन में अमृत झरता है। उसकी वंकिम गति में यौवन का उन्माद है, तिर्यक् दृष्टि में इन्द्रधनुष की उद्दीप्ति है. अदा है, इठलाहट है; वह मृत्यु है पर जीवन देने वाली। वह जीवन का कठोर घुमड़ता-उमड़ता हुआ छिलका है, पर भीतर के मधुर-कोमल-स्निग्ध रस का रक्षण करता हुआ, उसकी प्रतीति लिए हुए। वहाँ अभिव्यक्ति निश्शेष हो जाती है!

मनन और रणन एक ही तत्व के दो नाम हैं, वहाँ क्या पुरातन है क्या नूतन? वहाँ क्या भाषा का परिधान है, क्या भाव की जाति? बच्चे की असम्बद्ध तुतलाहट में जिस

अनिर्वचनीय को आभा प्रतिभासित है, वही क्या 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' उद्गीत करने वाले महान दार्शनिक-मुनि की सुसम्बद्ध-उक्ति में प्रतिभासित नहीं?—यही तो काव्य की शाश्वत भूमि है!

इसीलिए अपने दसवर्ष पूर्व व्रज-भाषा जैसी किसी भाषा में लिखे तुलसीदास को पाठकों के हाथों में पहुँचाते समय मुझे कोई बाधा, कोई संकोच नहीं अनुभव होता! तीन शताब्दि पूर्व अवतरित तुलसीदास जब आज पुराने नहीं हुए, लगभग इतने ही अरबों वर्ष पूर्व जन्मी पृथिवी पुरानी नहीं हुई, हजारों वर्ष पूर्व पैदा मानव की समस्याएँ आज तक वैसी ही ताजा हैं—उनके प्रस्तावित हल पुराने होजाएँ, उनके परिच्छद में अन्तर दिखाई दे, उनकी गति में क्षिप्रता का आभास हो, लहरें उपटती जाएँ, निबटती जाएँ, उसको संचित भाव-राशि को क्या आघात पहुंचता है कि दस वर्ष में मैं इस तुलसीदास को पुराना कह दूँ!

तुलसीदास का प्रामाणिक इतिहास नहीं मिलता, काव्य-वस्तु के लिये उसकी उतनी आवश्यकता भी नहीं। उसकी आधार-भूमि तो लोक-रंजन की वह मनोमय आकांक्षा है, जहाँ वह अपने अभिप्रेत को अपनी समस्या के क्षेत्र में रंजन की मूर्ति देखना चाहता है! तुलसीदास लोक-नेता थे, अतः लोक-रंजन को इस मनोमय (*Wishful*) भूमि पर उनकी कथाने भी कई रूप ग्रहण किए हों तो क्या आश्चर्य है! अति-प्राकृतिक (*Supernatural*) किम्वदन्तियों का परिष्कार भर कर देने से

आज के कथाकार का कार्य सुगम हो जाता है; यही नहीं; युग की आकांक्षा के आग्रह पर उन मार्मिक-स्थलों की व्याख्या करना भी उसके लिये आवश्यक है, जहाँ पर रंजन के लिये लोक-दृष्टि केन्द्रित हुई है! तुलसीदास के जीवन का मार्मिक-क्षण-मार्मिकतम क्षण-तो वही है जहाँ उन्हें पत्नी से महाभिनिष्क्रमण की दीक्षा मिली! मेरी कथा वहीं से प्रारंभ होती है!

दूसरे प्रसंग के बारे में ऐतिहासिक-शंका हो सकती है। कहा जाता है कि उतरती वयस में लोक सिद्धि प्राप्त करने के बाद तुलसीदास एक बार और अपनी प्रियतमा रत्नावली से मिले थे! प्रत्याख्यात रत्नावली के बारे में अधिक नहीं मिलता—भारतीय नारी की यह विशेषता है—किन्तु यदि कभी ऐसा मिलन हुआ हो, तो तेजस्विनी भारतीय-नारी रत्नावली और लोक-कल्याण के लिये अपने-आप को अपने अहम् का नितान्त-विनियोग कर चुके तुलसीदास के ऊपर क्या कुछ कैसी बीती होगी? — यह भी मेरी कथा-वस्तु का आधार है—कहना चाहिये मूल वस्तु बहुत-कुछ यही है।

दूसरा सर्ग प्रत्याख्यात रत्नावली का कुछ विरह-कालीन चित्रण है, भारतीय परम्परा के अनुकूल! वह एक विशिष्ट कथा का धीमीगति से चलने वाला पृष्ठ-संगीत है! यद्यपि वह पूर्ववर्ती कवियों की एक प्रवृत्ति का अनुकरण-सा दिखाई दे सकता है, किन्तु प्रबन्ध की धारा का निर्वाह करने के लिये भी यह आवश्यक था। प्रसंग में इतिवृत्तात्मक-घटनावली का

अभाव होते हुए भी उसे नितान्त ऊहात्मक ही नहीं रहने दिया गया है। पाठक स्वयम् इस प्रयत्न की परीक्षा करेंगे!

तुलसीदास के उत्कर्ष का रहस्य, उनके प्रत्याख्यात प्रेम की शक्ति (*Libido*) के आदर्शीकरण (*Sublimation*) में है। मनो-विज्ञान में इस शक्ति की बड़ी चर्चा है, बड़ा महत्व है। दुपहर की चिल-चिलाती धूप में, ऊपर का सूर्य और तले की धूल उन्हें जलधारा के समान शीतल लगती है, वह इसी शक्ति के कारण। उसकी क्षिप्र-चण्ड धारा को जब प्रियतमा की कटु-वाणी का प्रतिरोध मिलता है, तो कठिन चट्टानों को फोड़ती हुई वह राम-भक्ति के पावन क्षेत्र में मुड़ जाती है, उसके अजस्र वेग में समस्त लोक-जीवन आप्लावित हो उठता है। और इस ऐश्वर्य को, इस सिद्धि को पाने के बाद जब जीवन के उत्तरार्द्ध में वे एक बार और अकस्मात् ही अपनी परित्यक्ता प्रियतमा के सामने पहुँच जाते हैं, तो कौन कह सकता है कि उनका अन्तर्मन ही उन्हें वहाँ नहीं खींच ले गया? उस अन्धे अन्तर्मन (*Id*) की टटोलने की शक्ति का किसी ने कूत पाया है? — यहां तक कि उनके सिद्ध प्रमेय भी रत्नावली के सामने गड़-बड़ाने लग गए। समस्त सौर-मण्डल डगमगा उठा और हृदयासन पर पुनः राम के स्थान पर रत्नावली दिखाई देने लगी! वे भागे सिर पर पैर रख कर, अपने मन का स्वास्थ्य खोकर! इस कुंठा (*Frushation*) का अन्त कहां होता है, यह कौन कह सकता है? उत्क्षिप्ति *Neurosis*) में परिणत

हुई या विक्षप्ति (*Psychosis*) में ? — या उसका पुनः परिष्करण (*Reorientation*) हुआ ? कहते हैं तुलसीदास को उत्तरार्द्ध में बड़ी दैहिक-पीड़ा सहन करनी पड़ी थी ! क्या वह मानसिक आधि की प्रतिक्रिया न थी ? इतिहास कुछ नहीं कहता ! हम केवल वही जानते हैं, जो हमें जानना चाहिये ! किन्तु यह तो हम जानते ही हैं कि—तुलसीदास भी हाड़-मज्जा-मांस से प्रणीत मनुष्य थे !

तुलसीदास के कथानक पर इसी युग में लिखा लब्ध-प्रतिष्ठ निराला का प्रख्यात खण्ड काव्य भी प्रस्तुत है ! कथा का वह भाग मेरे काव्य के प्रथम सर्ग का विषय है । मैंने तुलसीदास की प्रति क्रिया को सामाजिक आघात पर आधारित नहीं, प्रत्युत् व्यक्तिगत आघात पर ही आधारित किया है। तुलसीदास के मन की रति को विरत करने वाली शक्ति स्वयम् स्फूर्त्त (Dynamic) होना आवश्यक है ! समाज की तत्कालीन स्थिति तो जीवन के प्रवाह के साथ चली ही आरही है, अतः उससे क्षोभ का तभी उत्पन्न होना कैसे स्वाभाविक होगा, जब कि तुलसीदास की पत्नी अपने पीहर चली गई थी ! रत्नावली के उनके जीवन में आने के पूर्व भी मुगल-दल का बादल भारत के क्षितिज पर वैसा ही छाया हुआ था, तब उनके ऊपर क्यों उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा ?

उनके द्वारा चित्रित रत्नावली की भूमिका भी भारतीय नारी के चित्रण का समर्थन नहीं करती ! अपने पति को

अपने में इतना अधिक अनुरत पाकर किस नारी का हृदय प्रसन्नता से नहीं खिल उठता?—वह तो केवल संकोच की जड़ता थी, जो रत्नावली को एक क्षण के लिए पागल बना गई! मैंने इन प्रसंगों को स्वाभाविक रूप देने का प्रयत्न किया है। यदि तुलसीदास पत्निगत प्राण थे, तो रत्नावली भी पति-गत प्राण थी! रत्नावली के चरित्र का निखार वस्तुतः द्वितीय और तृतीय सर्ग ही में होता है। वहीं पर वह रामचरित्र-मानस जैसे ग्रंथ के निर्माता को, मानों उनको सूझ-बूझ के लिए, स्वयम् उनकी राम भक्ति के लिए ललकारती है, और विजय पाती है।

'आँचल में दूध' और 'आँखों में पानी' वाली परित्यक्ता और उपेक्षिता भारतीय-नारी की शृंखला में रत्नावली भी एक कड़ी है। रत्नावली का तो दावा है कि 'मन के राम' को भूल कर जब 'काम की पीर सेवना' के लिए तुलसीदास उसके निकट उपनीत हुए थे, तब उस अधकार में दीपक भी उसी ने दिखलाया था! नारी के प्रति तुलसीदास के युग की जैसी भावना थी, मानों रत्नावली उसका बदला चुकाती है, किन्तु वह फिर भी नारी है। भारतीय और पति-गत प्राण! उसका विधान ही मानों चिर उपेक्षा और प्रत्याख्यान में है!

वस्तु-विधान में नूतन और पुरातन का पर्याप्त मेल दिखाई देगा। रीति की परंपरा भी है, यह मुझे स्वीकार करना चाहिए यदि दस वर्ष का व्यवधान इतनी तटस्थ-दृष्टि दे सके तो मैं इसे सार्थक भी समझता हूँ। रीति की परंपरा तो यहाँ तक है कि

इस छोटे से काव्य में भी षट्-ऋतु वर्णन दे दिया गया है, चाहे वह एक एक पद ही में हो ! अलंकारों का आग्रह भी है, यद्यपि मैं उसे दुराग्रह नहीं मानता; और इच्छानुसार मैंने शब्द भी तोड़े-मरोड़े हैं। यदि आज मुझे तुलसीदास लिखने की प्रेरणा हो तो मैं न केवल भाषा ही बदलूँगा, बहुतेरे प्रसंग भी बदल जाएँगे- सम्भव है उस वस्तु का इस वस्तु से सादृश्य ही नहो। सच तो, इस तुलसीदास का कवि अब नहीं रहा; और मैं उसका परिष्कार करने या संस्कार करने का अपने में साहस ही नहीं पाता।

भाषा के बारे में मैं क्या कहूँ ? इसे मैंने व्रज-भाषा जैसी कुछ भाषा कहा है। मैंने व्रज-भाषा का शास्त्रीय अध्ययन नहीं किया; केवल हिन्दी के साहित्य का अनुशीलन किया है। खड़ी बोली के प्रभाव के पूर्व हिन्दी का काव्य-साहित्य जिस भाषा में प्रकट हुआ है, वह सामान्यतया कहलाई तो व्रज-भाषा ही जाती है, किन्तु उसमें अवधी बुन्देली, मैथिली आदि की पर्याप्त रुझानें मिलती हैं, जो जहाँ का कवि हुआ, उसकी कविता में उन्हीं रूपों का आग्रह होगया। मैं व्रज के प्रभाव से बाहर वाले देश-काल का निवासी रहा हूँ, अतः इन सभी रूपों के प्रति मेरी समान गति है। मैंने उन सब रूपों को यथावश्यकता स्वीकार किया है ! कभी एकाध सज्जन ने कहा भी कि व्रज-भाषा में 'ड़' की जगह 'र' का प्रयोग होता है; 'उछलि' की जगह 'उछरि' लिखा जाता है; किन्तु मैंने फिर भी उस ओर

ध्यान नहीं दिया। मैं जानता था कि इतना परिवर्त्तन कर देने पर भी मेरी भाषा टकसाली ब्रज नहीं हो सकता, फिर इस ओर सिर पच्ची करने से लाभ ही क्या!

जिस संस्था में इस ग्रन्थ की रचना हुई, वही संस्था इसे प्रकाशित कर रही है, यह मेरे लिये संतोष की बात है! वस्तुतः यही कारण इसके देर से प्रकाशित होने का भी है। इस संस्था को मैं तभी से अपना परिवार मानता हूँ। मुझे गर्व और हर्ष है कि मेरे विद्यार्थी भी इस संस्था में इस पुस्तक के प्रकाशन में योग दे रहे हैं। जितना मैंने उन्हें सिखाया है, उससे अधिक मैं उनसे सीखा हूँ वहाँ सभी मेरे मित्र हैं, जो मेरे साहित्यिक-जीवन के विकास में बड़ी रुचि और प्रेरणा देते रहे हैं। विश्व विद्यापीठ के कुलपति से लगाकर वहाँ के परिचारक तक से मेरा आध्यात्मिक सबंध है। तब मैं किसे धन्यवाद दूँ, और किसकी कृतज्ञता प्रकाशित करूँ. वे ही इसको प्रकाशित करें, मुद्रित करें, प्रूफ पढ़ें, शब्द-कोष तैयार करें अपना ही तो काम कर रहे हैं। मेरी तो केवल यही कामना है कि यह कृति मुझे उन सब के और भी निकटतम ले जाए!

प्रेस की कुछ अशुद्धियाँ, प्रायः मात्राओं की, रह ही गईं! कहीं कहीं अनावश्यक समास और विराम चिन्ह भी लग गए हैं, तो कहीं रह गए हैं यों एक शुद्धि-पत्र साथ में जारहा है, किन्तु फिर भी पाठकों से क्षमा प्रार्थना है, आशा है, पुस्तक प्रारंभ करने के पूर्व वे पुस्तक को शुद्ध कर लेंगे!

कैसे संयोग की बात है कि पुस्तक किसी तुलसी-जयन्ती पर प्रारम्भ हुई, और इस आत्मशोलन के रूप में इसकी परि समाप्ति लेखक की किसी जन्म-ग्रान्थ पर !

दिल्ली (शहादरा)
मार्गशीर्ष कृष्ण ५, २००६

स्नेह, ओझा.

१

तरुन - रवि - रथ कै तुरग हू मन्द पा कछु रास
मन्द - गति गहि गगन-गिरि पेखन लगै भव - त्रास;
तरनि की खर - किरन करतीं धरनि कौ लछि - भेद,
व्यजन डौलत निज-सदन महि, सकल-जन सनि सेद।

जरति छिति-छाती-तवा-सी, भरि तरै अति - ताय
तरु हिलावत दल नहीं, हारी हवा हू हाय!
बिकल भूभर कै बबूलनि सब लगै बिलखान
जीव खग-मृग जगत कै लागै सबै कहलान।

वृच्छ-छाया, नीड़, घर ' पसु, पच्छि, नर सायास
टरत नैंक न ऐक कहुँ, जिन जित कियौ आवास !
कोपि बाली - सुवन मनु निज पद दियौ भू रोपि
थोपि हारै जतन, नीगोपि न सक्यौ तल को ८ पि !

यहि समै जब सब थमै, चींटिहु भ्रमै नहिँ कोइ
सून-पथ धरि दून-गति यहि भू नवीन बटोहि-
हृदय - धनु की कामना - गुन करसि जनु सर आप
चण्ड - गति धावत हुतौ बहु छण्डि अपुनौ चाप ।

सेद कै बहु बिन्दुअन सौँ खेद तन कौ ग्यात
द्रुत - पदनि तैँ नहिँ दुरायौ वेग मन कौ जात
गौर - सेखर परत केसर स्रमज - सीकर छूटि,
बिधु - छटा कौ अघट - घट, भट मनहुँ पीवत लूटि ।

बिसम-ग्रीसम-ताप भीसम, सरल निज-मन-मानि
-मूर्त्त-सँकलप-लौ, नहीँ जहँ अलप अन्तर-कानि-
हरबरै - हारै - थकै - सै सरल - तुलसी मौन
गौन करतै जू हतै निज ससुर ही कै गौन।

प्रात-ही पितु - गृह - समागत प्रियतमा की प्रीति,
बिरह-जुर की जरनि कौँ घृत की भई उद्भीति।
भ्रस्ट व्है दृग-कांति-व्रत तैँ औ अकर्सन-हीन
छिप्र-उल्का ज्यौँ पड़ै छूँटि ससुर-गृह मैँ दीन।

× × ×

उत सहेलिन, स्रुति-सहज सुनि निज-सजनि-आगौन
मञ्जु-कञ्जाञ्जलि-पुरञ्जित-लौं कियौ यह भौन।
चन्द की दुति मन्द करि, औ कवि-कला हू मन्द
तुंद-क्रीड़ा सब हुतीं सानन्द भंजति, दन्द।

पूछती ससुरार की घातैं बिहँसि अलि ऐक,
अपर कूदति, उतर की नहिं बाट जोहति नैंक-
"कौन नभ ससि-दरस करिहैं अब पिया कै नैन?
बिरह-दावा सजन तन पै अवसि जरिहै मैन!"

"बिरम अलि, मम मरम कौ तुम प्रथम उत्तर देहु,
बर बिछुरि पिय दृगनि ढारै आँसुवन-नद-नेहु!"
ललित लीला लस कपोलनि लोल-लाली लीन्ह,
लहर मैं जनु अरुन मधु-मद-मोद-माती मीन!

रूप-लालस ऐक अलि उत अधर रस की प्यास
भरन कौं निज चसक, जोहति पास, अवसर-आस;
अङ्गना कै रङ्ग-रागोमङ्ग-ढङ्ग अनेक
ऐक सखि सब, चौंकि कीन्हे भङ्ग ऐकाएक;

पुनि सुझायौ सैन ही, 'पट ओर करु दृग-पात
कच्छ कै पट-पच्छ पै इक जन जनायौ जात!'
फेरि दृग दीस्यौ, खड़ै उत मौन-तुलसीदास
भीत-मृग ह्वै, मटकि दृग अलि, बहुरि सटकौं पास।

छिनक हो औ, पोंछ रत्नावलि भइ छाब-छीन
हृदय-लङ्का असुर-सङ्का सदन निज जनु कीन।
सपदि उत छिपि ऐक अलि ने गुदगुदायौ गात
कान कहिकै, "सुमुखि! लखु निज विरह-निसि कौ प्रात।"

चकित-पुलकित-भ्रमित-संकित-बलित-सी रत्नालि—
लेखि बिकलति, समुझि हिय सब, तजि उठीं सब आलि;
मौन तुलसी सौं कियौ पुनि द्वार आ, तिन नौन
"ऐक रजनी हू न सजनिहिं तजि सकै पितु-भौन!"

बिहँसि बहु बाहिर भईं, कछु उत्तर कौ नहिं हेत;
इत दिसी रत्नावली पिय-चरन-परसन लेत!
"कहहु, कत इत आज ही आए प्रभो! यहि धूप,
अरक-खर-कर-निकर कहलत कुमुद-कुल-सौ रूप!

"सकल कुल की कुसल कहु पुनि, मोटि चिन्ता चित्त
प्रात ही आई इतै लै चरन - रज - बर - बित्त;
इत पधारै नाथ ! कहु सब बेगि कारन कौन ?"
तबहि तुलसी-अधर बिलसी मधुर मुसकनि मौन !

"बदन-बिधु जौलौं तिहारौ नहिं निहारौं नैन,
बिरह-ज्वाला-जरित-जिय कौं नैंक है कहँ चैन ?
जस चली हिय-हारिनी ! तू हरन कर हिय-हास
बिबस-तापस-हिय-बसी बस बिसम-दीरघ साँस !

"तुरत तबही पद कियौ यहि पन्थ कौ अनुसार,
अँसु ऊपर, पँसु तर - बिरहागि भे जलधार !"
लोभ-दृग, सुख-भोग कछु, छबि छहरि औ कछु छोभ
जुमुखि-मुख जनु जलद-जित-नभ इन्द्र-धनु भो सोभ !

मानिनी कै मान की पै ठानि मन मनु टैक
नेह कै अधिकार की धौं, रास खींची नैंक;
नचत भृकुटि, तुरत मनु भो मान रति कौ मैन
बैन बरछी-से छुटै औ भे तिरीछे नैन !

"लाज कित गी-भाजि आज जु साथ आए दौरि
मुँह दिखैबै-जोग हू कहु, कहँ रही निज पौरि ?
अलिन-मन तौ अजहुँ तैं तुम छेय कियौ सनमान
जनक-जननी सुनत ही करिहैं कहा अनुमान ?"

हृदय-हुलसी बेलि झुलसी, हूल-सी हिय लागि
आगि-सी तन लागि जासौं ज्योति-सी कछु जागि;
हाथ पै दै हाथ बैठै, विनत करि निज-माथ;
अधर-धनु पुनि बिसिख तीखे सुमुखि खैंचै भाथ !

"हाड़ - मज्जा - माँस की यह देह - सज्जा - प्रीत
ग्यान कै आगार या की करत नहिँ परतीत!
राम सौँ जौ कहुँ जुरातौ हाय! ऐतौ नेह
तरनि भव-जल निधि जुराती, दुरित-पूरित-देह!"

(निरखि, पै पिय-बिधु-बदन पर राहु-मुद्रा-रोच)
"व्है गई सौ व्है गई, अब काह कीजै सोच!
जरद-मुँह झँटि गरद, दीजै सरद-मन बिसराम
भजन-भोजन आदि कौ जौलौँ करौँ सरजाम!"

सुन्दरी-रत्नावली जेहि छिन करी इत पीठि!
दीठि टकरा सून्य तुलसी कठिन ठानी नीठि!
"साँच ही तौ कहि गई नहिँ झूँठ कौ लौलेस
अस्थि चर्मासेस - तन मैँ है कहा सुविसेस!

"कपट-छल कौ घट, लिऐ जग-जीव, सङ्कट-घाट,
चहत पूरन जलधि-अग-जल, कर अनेरै काट;
बीच-धारा भौंर खींचत, सामनै बस मीच
तरनि हरि की रटनि ही की, तरि सकै जल-बीच!

"अटल-मोहक-पटन तौ क्यौं निपट ही लीजै न
आस हो, कृकलास-तिय-भुज-पास की कीजै न!
स्नान-भोजन-भजन कौ इत अब कहा है क'म!
रोम-रोम रमा-रमण रमि, अब रमैंगे राम!

"रहहु, रत्नावलि! रहहु, चिर-काल निज पितु-ओक
कोकनद-मन-सोकहर, मो-हिय कियौ आलोक!
बिरस-रसना सौं करौं कस, सुभगि! तव गुन-गान
राम-रस कै चसक रसना बोरि, दीन्हे प्रान!

"तव निकेतन आज तैं साकेत मोरे हेत
राजधानी है, जहाँ हिय राम आसन लेत !"
प्रणति करि वा देवि कौ उठि निकसि आए द्वार
सौध कौ पुनि औध-लौं नमि चल दिऐ पथधार !

जात पथ धूसर हतै रथ लेत, अँथ-गिरि भानु;
अपर-रवि लौं भूमि-पथ-सौं भक्ति-पावन-सानु
चढ़ रहै तुलसी लसित भे सस्य-स्यामल-भूमि
लेत रजकन अरुन-चरनहिं प्रनत-भावनि चूमि !

नव-प्रभा-रोहित-बिहङ्गम, उच्च अति-अति उच्च,
वृच्छ तैं गिरि-पच्छ उड़ि पुनि रहि गयौ नभ-सुच्छ !
मलिन-सन्ध्या-धूसरित-दुति पलटि भइ तम-तोम
रमति, राम प्रकासि, ज्यौंती तुलसि हिय-हिय-रोम !

सजग-मग अघ-जगत, जनु खग अगम पूरन-काम
रटत सब निज सरस-रसना, 'राम-राघव-राम !'
तुलसि-अन्तर राम-रटना, बाह्य-तुलसी मौन,
कौन मारग बाम है ! – यहु गौन प्रियतम भौन !

खरकि हरखै राम-प्रिय-मुख हृदय खिरकी माहिँ
पद-चपलता, हिय-पुलक पलहू पलानी नाहिँ
तिमिर की बाढ़ी सघनता, ओट करती दीठि
गगन कै पथ नखत पैठै पीठि छ्वावत पीठि !

चन्द्र बिनु पै कौन मैटै औनि कौ अँधियार ?
राम-रट हिय-सुभ-बिधूदय तुलसिहू कौ सार !
तिमिर आगै गौन कौ कछु ब्यौंत दीस्यौ ही न
हारि, तुलसी तरु-तलै तब निज-बसेरो कीन !

अंध-जङ्गल भङ्ग भो पुनि विहँग-मङ्गल-गान
प्रमुद पावन परसि करतौ पवन, प्रवहित प्रान!
साँस, प्रति-प्रति, ध्वनित जिनकै मनुज को भव-त्रास
भाव - तंत्रो - तार झनकै हृदय तुलसीदास!

"जलधि-जग-मधि डूबतौं-सौ धरम-धृति कौ पोत
जोग कछु इतबार नहिँ पतवार को कहुँ ब्यौंत!
रुदन करती मनुजता हा! दनुजता-नद-तीर
आधि-व्याधा-बिद्ध हरिनिहिँ, को बँधावे धीर?

"अपटु-मानव कपट-लिपटत घुटत सङ्कट-घाट,
क्यौं बनै हरि-भगति बिनु निष्कण्ट भव की बाट!"
सोचि कछु मन, मोचि लोचनि नीर, - पूरन-काम
शान्त सोऐ हृदय गुनि, 'रच्छहु, रमापति-राम!'

२

समय बीत्यौ, बहुरि रीत्यौ तरनि हू कौ ताप;
कौन यहि जग नित रह्यौ आसीस कैधौं साप !
सरस - बरसा - रस बसी तरसित - रसा सरसानि,
मोद बहु, चहुँ कोद बिगस्यौ, मेदिनी प्रमुदानि !

तड़पड़ाती - तड़ित कौं कड़कड़ित कर निज गोद
उमड़ि, अड़ि - अड़ि, घुमड़तै नभ, गड़गड़ा पाथोद !
कुहक कहुँ साकार चमकति बहकि जनु हथिसारि
भभरि भाजत करत भगदर द्विरद - दल चिग्घारि !

छिनक-छबि, कै, छिनक छीनन दिग्गजनि जिय धारि
रार ही-सी करि रहै नभ, चहुँधि धूँआधार।
कहुँ प्रतीची भंजत लखि रवि-नीच-मृग-मारीच
राम छाँड़त बिज्जु-सर जनु इन्द्र-धनु निज खींच !

धारि बिकसित-कुसुम-कुल सौं कलित हरित-दुकूल,
द्रुमनि सौं लिपटाति मधु-मद-माति बेली झूल !
सरित-सरिता करत सब जनु सरस-कविता-कांत
छन्द-गति कहुँ मन्द, द्रुत कहुँ पुलक-पुलकित प्रांत !

बिबिध-पुरजन-हृदय-मधि हू मेघ बरसत मोद;
उछलि. छलछल सलिल उछलत, सकल सिसु सविनोद,
दुख-नसावन, हिय-हँसावन, अवनि सावन-मास
मनुज-हिय सिव-सत्य-सुन्दर अमल-तीरथ-भास !

मार कौ अतिचार लखि जनु चारु निज कान्तार
रुद्र कौ भव-रूप धार्‌यौ प्रकृति ने सुविचार,
मौलि-मंगल बिथुरि निज पिङ्गल-जटा कौ जूट
स्रवति रस बरसात-मिस, सुर-सरित जहँ तैँ छूटि,

पलक-पट करि रुद्ध रोसारुन-युगल-दृग सुद्ध
मञ्जु-मनमथ-मद-मथन कौँ मन रहै गुनि क्रुद्ध;
दामिनी-दुति-दीप्त दौ-दृग द्रवत दव दुरदण्ड
ज्योँ तिरिङ्गिन अगिन-कन सौँ पुनि भर्‌यौ ब्रह्मण्ड;

पौन-पन्नग फारि निज फन करत फौँ-फुङ्कार
डमरु करका, बरद-बारिद घोस-घन-हुङ्कार,
कुलिस-हत तरु-दाह जनु स्मर-दाह की परतीत
करत यौँहि प्रकृति पलपल, पलटि निज-पट-स्फीत!

सकल मुखरित-गाँव में बस ऐक ही यह गेह
निपट भासत दीन मानहु, हीन-चेतन-देह !
दुसह-दुख की दीसती-सी अमिट मानौं छाप
आपही अभिसाप मय जहँ मधुर-मौनालाप !

दिसत जस नभ, विवस सिसकत दिवस-निसि कै सन्ध
जहँ न कमलिनि-नाथ रवि औ, कुमुद-बान्धव-चन्द;
और सारै दृग-पसारै ऐक तारै की न
परति आभा, हरति जौ कहुँ टुक निरासा-पीन;

जलद हू कौ पटल नहिँ कहुँ नैँक हू दिखरात
भजत-रवि तैँ लूटि जौ जग हेम तौ बिखरात,
और इत प्राची-दिसा सौँ ग्रसति तम की रेस;
हाय ! तैसौ ही दिसत यह साप-बस गृह-देस

कै पुरातन - नयन, जहँ नहिँ दामिनी कौ बास,
पूतरिन हू परत नहिँ धौँ दीठि कौ परकास:
कछु भरै - से, कछु - जरै - से, औ जुरै - बेचैन—
धौर तैसिय, कबहुँ गृह है, और कबहूँ है न !

निपट - अन्तर-प्रान्त हू है अमित - दावा - दग्ध
जरत जहँ जगमगत-दीपक-ज्योँति-वर्तिक-स्निग्ध !
जलधि-हिय जनु पूर्निमा लहि होत बहु उत्क्रान्त
राहु-मुँह मैँ ग्रसित-ससि पै, हरत नैँक न ध्वान्त !

छीन - दीपक - दीपती बहु धुनकती - सी माथ
ऐक घेरे मैँ घिरी जनु घेरि निज - भुज - बाथ
घेरती - सी गोद मैँ निज वेदना की साछि,
और बैहरि - बाह मैँ छिपि, छिटकि छोरति पाछि !

ऐक कौने, बिनु बिछौने, दीन-छौने तुल्य
बधिक-बिधिकै बिबिध-बेधे सहति चित मैं सल्य
दीन-सी छबि-छीन-सी बहु, जनु परी कहुँ जालि
बिबस, सरबस-हीन-सी बस, बिबसना रत्नालि !

तुलसि कौ हरि-भगति की रति राम-सिय सी मण्डि
खण्ड महि-मण्डप पर्‌यौ जनु चण्ड कौ कोदण्ड;
परसुधर – लौं मधुर-अधराधर भए धवलाभ
अछय-गुन सी सिथिल-दृगता हू भई होनाभ !

सलिल कौ नहिं लेस कहुँ धौं, ऐक गाथा-सेस
बिकल, सीतल को करै जहँ ज्वालही तल-देस ?
जरित-सूखी-सरित-सी, जित भरित प्रजरित रेत
त्रस्त-मरु-उर, अस्ति-धरि ज्यौं साँस टूटै लेत !

सरद-राका-सी उड़त जहँ रहि पताका कोट
अघट, औचक बिधु पटै झट, निपट-घन-पट-ओट,
नयन-तारा-पूतरी हू वूरि गइ जल-वाह
जौन्ह कौ पय हू पियौ सब जलद-अहिनी आह!

छीन-तार मलीन-छबि धौं, दीन बानी-बीन!
कै, गिरा ही परति गिरि गिरि आज वाचा-हीन!
बिरमि, बारक, बहुरि दीरघ-साँस फिर फि जेत
साँस-भार न सकत सहि तन-बारि जीवन-सेत!

सलिल-बिछुरी एक सफरी जनु परी बहु-जाल
जल-भरी-अँखियानि निरखति निकट लहरी-माल
बूझती-सी जाति, चितवति, कछुक बिधि कौ सैन
उतर पर, अवधारि जिय मैं, नाहिँ काढ़ति बैन!

धाइ मधुराधर रहै कछु हाय ! हहरै डोलि
कछु कहै-से कछु गहै-से, कछु रहै-से बोलि;
निज - हृदय की आरसी, लखि भार - सी, दै दण्ड
बचन बिन्हल उपल - दल हनि, करति जनु सत - खण्ड !

"कौन खाँचत तार तन कै हृदय टूटी-बीन
होत सलिलाधीन किय का मीन चेतन-हीन ?
कुण्डली-सी मण्डि हिय क्यौं परत अहि-सन्देह ?
नेह कौ पय-पिवत हू क्यौ बिस पगारत देह ?

"वय सिद्धौसे कौन मौं-से निपट पौसै पाप ?
हृदय, निज-पद-चाप हू जौ थारती सन्ताप ?
सहन करि निज वचन हू कौ परत अधरनि बोझ,
नयन-नद कौ अश्रु-जल है करत किन कौ खोज ?

"दग्ध-हिय में जरन अब कछु सहन परती है न
बिरह-तापित-तल्प पै नहिँ अल्प परती चैन !
जीह पर नित बसि रह्यो जौ सरस-रस कौ भौन
नाम किन साकार बनतौ हाय ! तुलसी-सौन !!

"नैह - नै हिय उपटती - सी निपट भइ बेकाम
बादि-बैनन-सौँ बनी हा ! निज बदन बदनाम !
बिजय हिय पर पाइ जिह अब गहति कै सौ मौन ?
रहति अधरनि दहति सम्प्रति, ज्यौँ जरै पै नौन !

"नारि - जीवन आरसी है, पारदरसी—काँच
करत पुनि पति-मिलन-कलई, सुलभ निज छबि-साँच;
बिरह कौ अब पट पर्‌यौ जब मलिन अति ही पीन
दुरति निज छबि, सुरति दिन दिन, झुरति बिसुरति दीन !

"नारि-जीवन कौ प्रयोजन तौ नसान्यौ हाय?
बेलि का उपधान-तरु-बिनु परहिँ गिरि निज पाँय?
भुवन-बीना पतनि-जीवन कौ महा-सङ्गीत
छीन-गति, यति-हीन, छय-लय, स्वर-रहित उन्नीत?

भरि बहोँतिनि बहुरि बिथुरै-बार-बारौ माथ
धरनि पटक्यौ करति हा! हा! बहु पछारैँ खाति,
उपल मनु पति नाम कौ लहि, बिरह कै उपकूल
अनिल-स्मृति-सूत-लहर अरप्यौ मौलि-उत्पल-फूल!

पर भयौ जनु दूसरै छिन रतन कै चित चेत
मनहु पायौ, अरध-ऊरध फेरि दृग, निज हेत;
"अमित-पति-रति पाइ निज मैँ कौन पतनी आहिँ
चाव चित चढ़ि, परति जौ सौभाग्य-रसनिधि नाहिँ!

"पर न निज उद्भाव बिसरति कबहुँ पति-कल्यान!
पतनि-जीवन-तरनि कौं जग-जलधि पति-तूफान,
लेखि जीवन-अंत हू जिन लहर-लिपि कै लेख
हाय! उन बिनु चल न पावति रेख हू कहुँ ऐक!

'बिसरि जीवन-दान की निज गहिर सीतल सक्ति
और हिय लै ध्वन्समइ खर-काम-क्रीड़ा सक्ति
कामना की गिरि लहर सौं तरनि कौ टकरात
लहर-उन्मद-मदन-मद तउ तरनि नहिँ सरसात!

"तब उठावति भाव-तल निज सलिल-तल तैं ऊँच
डगमगत-सगपगत हू वह करति आगै कूँच;
लहरि, पै, बिनु गहरि, करती हहरि वह तन चूर
कै उछारति बहु पछारति फैंकि तट तैं दूर!

"इत पपीहा 'पी कहाँ' रटि उत माँगि सरोस,
चहत जनु पिय-निष्क्रमन कौ मढ़न मोपर दोस;
कुहुकि पिक, सिखि कूजि, घन गिरि करत मम अपमान,
धीर धरि रत्नावली ! तू सहन करु यहु दान !

"हाय ! बिनु जिन रतन प्रभु ! दिन ऐक तव बीत्यौ न
रेनु-रोहित करत ताकौं, हिय पसीज्यौ क्यौं न ?
रतन गुनि जिन नयन-जल कौं बहन कबहुँ न दीन
बिरह - कुम्भज - पान रत्नाकर भए - सौ छीन !

"पर चलाए रुचिर-चरचा होत तिनकी काह,
नाहिं प्रजरित-प्यार, सीतल नैंक हीतल नाहिं !
पलक-पट जो दुरत दृग हू, दिपति-देखनहार,
अनत तौ, दृग-परिधि-बाहिर मिलत कत कछु सार ?

"मृदु-प्रतीच्छा-मय-दिवस औ सरस-निसि, रस रास,
सब गए, हिय आस औ विसवास मधु-अभिलास !
सत्य हू जब नाहिँ, माया कौ कहाँ तौ ठौर ?
असल बिनु कहुँ नकल ? पर यह बिजय तौ नहिँ मोर !

"और पति हू कौँ मिली कत विजय की जय-माल ?
पद-समर्पित-सुमन मर्दित जिन कियौ ततकाल !
तौ, अहै प्रति जोगिता-मय पतनि-पति-सम्बन्ध ?
जय-अजय अरपन-समरपन कौ कहाँ यह द्वन्द ?

"हाय नारी ! साधना निज नैँक जानी तैँ न
दान करि प्रतिदान पै जौ ध्यान देति अचैन !
जौ रह्यौ कितहूँ कहन कौँ अपुन कौ कछु नाहिँ
निरखु, यहि बन्धन-विमोचन, साँच मुगती याहि !

"नारि कै धन तैं न जग कछु अन्य है बहुमोल
तुच्छ विनिमय पात कबहुँन कोइ ताकौ तोल
कौन है तब यहि जगत मैं आज मों-सम आन
पतनि कै निज धरम-हित जौ करत पति हू दान !

इत खुलै कैबार ऐकै बार धाइ बयार
झपटि चाहि झट समेटन लिपटि, दीपक-धार !
बिमिटि, पै, खुद लेटि प्रथमहिं, गात निज मनु मेटि
पुनि भई थिर ऐंठि, बैठति निज शिखा की टेंटि !

बहत बात, सिहात त्यौं त्यौं नमत जात सहास
रुझत पुनि पुनि, बुझत-सुलझत, निपट निदरत त्रास !
बिहँसि, हँसि हँसि, रहसि मानहु करत कछु उदबोध
'दुख-विभव कै भाव ही सिव-भाव परतौ कौंधि !

कछु भयौ रत्नावली-हिय निरखि, मानहु चेत
दिपत-दीपक-गति भई जनु विरह-सरिता सेत।
अधर पुट तिनकै खुलै संबोधि दीपक-ज्यो ति
अनिल छेड़ी वीनवर कै तार-सी धुनि होति-

"विरम दीपक! प्रथम समुझावहु, मरम की बात
कौन हिय की घात गुनि, गुर-गात काँपत जात?
पूरि, पुनि लहि कौन जिय की पिय अमिय की मूरि
भूरि-भावनि पूरि मूरति उठति नव-रस चूरि?

"स्याम-चादर मैं छिपी-सी विरह-कादर राति
छाति बिजुरिन की मनौं सुलगाति होरी जाति;
नखत-अँसुअन-माल हू मानौं भई दौ-दग्ध
गरज-घन-सी हृदय-धरकन निपट-दीसति मुग्ध!

"ताहि की गहि बिरल - पटतर दहत तू निज-देह
सर - समीरन - वाह जीवन कौं भयौ सन्देह,
दग्ध - निशि तव धार जल की सरस बरसी कौन
उकसि जीवन-ज्योंति त्यौं तुव जरत-जीवन हौन !

"नेह पोसत हो जियत तू, पियत रस सरसात
पाइ निसि पै, बिरह लौं, कत जरत पावन प्रात ?
निज जियौ जरि, उजरि अन्तर, करि उजैरो देत
पर, तरै हौ बिरह - तम - तूमार कौने हेत ?

"समुझि परतौ भेद, पावत नेह कौ आधार
जरत अधिकाधिक, जहाँ लौं अधिक निसि अँधियार !
पात जीवन-दान मानहु, रहत जरतहि नित्य
जगत-ज्वाल मिल्यौ तुम्हैं कत, यह सँजीवन-सत्य ?

"अनल-कन कौं तरल करकै, भरि अँसौं हैं - नैन
दहत तन, आलोक पसरत, लहत अतुलित-चैन !
बहु जगावत ज्योंति जिय की करत तन निस्सत्व
करि उजैरौ जगत-भर मैं, लहत अमृत-तत्व !!

"लेखि तौंकौं स्नेह ही में जरत सब ही सर्ग
हेत-हित व्रत-सलभ तौंपै करत निज-उत्सर्ग !
नेह ही सौं जरत मेरौहू सिरातौ - गात
तदपि हा ! अपहरन होन न पात नैंकहु ध्वान्त !

"जरत तौ सत विरह कौ, कहु, साँचि रोदन - मध्य ?
ऐक कौ सुख करन होत अनेक-सुख-मधि बध्य ?
दिसत तौ फुरि, अब रुदन-मधि हू न धीरज - वास !
करुन-धुनि-पिय तरनि-दुति तौ जुगनु-दिन-परकास !

स्रौन करि निज बिरुद कौ बर-मधुर-मंगल-गान
नाइ सिर जनु बिदित-अभिमत कौ कियौ सम्मान!
पुनि थिरानौ थान थोरिक, थिरकि पुनि प्रनयीप
राँचि, बहु बहु नाचि आँचनि, जरत साँचहु दीप!

औ रहै उत बरसि बारिद बारि मूसरधार
चाहि जनु लय करन ऐकै बार बसुधागार!
मोद-मत चहुँ कोद बिजुरी, दै प्रमोद पयोद
खेलि, उड़ि, फिरि फुदकती रहि सघन-घन की गोद!

परसि बूँदैं, मनहु खूँदै खोलि मूँदै नैन
पौन-हय हू चहत अब ही जुरन-रन-घन-गैन!
दिसत तरु जनु रिसत-भट रन बिसत करका-भीर
चमक चपला की चितावति चीरि मेचक-चीर!

नयन हू उत ढरन लागै करन घन सौं होर
बाँध रत्नावलि हृदय कौ नियति डार्‌यौ तोर;
बिरह-दव हू बारि-वरवा मँह चुरानी जाति
नीर-निधि-नत नैन नैंकहु नींद नाहिं नियराति !

प्रकृति, पै, तव निरत-निज क्रांति, उत अविचलित-गात
जनु रही लै तरित-दीपक राह हेरत प्रात !
तिमिर-तस्कर बाँधि निज-पट तरनि-मुगता-माल
भजत दीसत, दुरत जनु तन, तरित-दीपक-ज्वाल !

नभ-दरिद्र, अछुद्र-रोदन-निरत अश्रु-समुद्र
जनु दहाड़त, लुटत लखि निज रत्न-उड़ु बित-छुद्र !
ढरत दृग उत, हिय-जलधि-जल लहर लहि उत्ताल
चकित बिजड़ित ही रही धरनी पड़ी रत्नावलि !

३

अमित-धृति मति, ऐक-गति धरि, चलित-पद करि छेप
स्मिरति-छत मृत-मूरि नर कै अमर-मरहम लेप;
जगत-पथ अथ अन्त लौं मथि, अथक निज रथ हाँकि
कालपति चलते रहै जग-बिपुल-बाधा टाँकि !

बहुरि बीतत जे रहे छिन निपट जुग-जुग जान
बीतते बहु, सहज बनि दिन-मास औ ऋतु मान;
बहुरि आवत दिवस-निसि फिरि, पर न सो ही फेरि
बरस पर बहु बरस बीतत जात बिन ही बेरि

साज नित नूतन सजा सञ्जोगिनी कै काज
बिरहिनी कौं, पानि पिक-धुनि कदन, लै रितुराज
करि पलासनि हास-बिलसित, पौन हू कौं रौन
प्रति बरस करि बिरस-रस, आ, बहुरि कीन्यौ गौन!

तपति उतपति जगत की जब दिपत-दिनपति-तेज
धरनि जारन कौ किरन-गन करत मानहु पैज,
पौन जनु कहुँ औनि कौ हिम-कौनु लै बिरमात
बिसम-ग्रीसम हू रह्यौ अस, जरत, आवत जात!

दिसत मावस जौन पावस, बिबस पून्यौ-राति
बरहि नीकै कूकि जारत बिरहिनी की छाति,
पहिरि बिद्युद्दाम गर, तन बारिदाम्बर धारि
सरस-बरसा हू गई पुनि आइ केतिक बारि!

स्याम-घन-कच, जुवति-पावस-जरठता-परमान
सेत सन-से घन रहै उड़ि, गगन कै सन्धान;
रजनि हू शरदेन्दु-बिम्बानन किए निज सुच्छ
बार बहु बीती निहारति मुकुर मैं छबि-अच्छ!

गहन अगहन करत, रहतौ कहन कौं रवि-तेज
और पोसन पात पूसन हू निसा की सेज!
द्यौस हू जिन पौस धरतौ औस ही कौ पंथ
गहर बिनु, लहि समय आवत-जात ही हेमन्त!

निसिचरी-सुरमा-बदन जहँ सिसिर-निसि कौ गात
पैठि मारुति-सी सँजोगिनि सपदि पावति प्रात;
लहति पार न, पर, बियोगिनि, कात रहतहि होर
अस तुसाराहत - सिसिर बहु छिपि छए छिति - छोर !

तरुनता-तरु कै झरै, अरु, अरुन-किसलय-पात
सरल - सिसु भें स - छल - विभ्रम तरुनता - उतपात
जरठ – जीवन कै रहै पुनि नाम ही अवसेस
बहुरि नव - मानव भरै भू विभव - भव - सुविसेस !

जेहि लखियत, लगत नूतन, परत नहिँ पहिचान
मनहु अपरिज्ञान कौ चसमा धर्‌यौ नेनानि !
अटवि हू कै निपट पलटै पट - बिभूसन अङ्ग
अङ्ग सब गदराइ धारै प्रकृति नै नव – रङ्ग !

पर्त पै पुनि पर्त लै परिवर्तननि - आवर्त
प्रत्न भे रत्नालि हू कै चित्त-वृत्ति-विवर्त;
पाँव टूटै तरुनता कै सब भयौ बिद्रूप
नैंक रहि तन रूप की नहिँ धूप-छाँह अनूप !

खरब भो सब गरब मन कौ, सरब मद कौ चाव;
और, बावन-अहुँठ-पाँवन-लौं विरह कै भाव—
रूप-जौवन-सीस दै, जनु निज पुरायौ पैज
प्रौढ़ता - पाताल कौ बलि, करति राज स-तेज !

प्रबल-पावस कौ नहीं जहँ मलिन-बर परवाह
सरद की थिरता-रता-सी अमल-सरिता, आह!
वासनामय-प्रनय की करि साधना जनु आज
मन्द-परिमल-मलय-मारुत-सी रही बिभ्राज!

झलकती पिय-मूरती रहि पलक ही कै प्रांत
किरकिरी-सी इक हुती तब दृग-कनीनिन क्रांत,
अब समानैं उर-मुकुर मैं आजु धौं हृदयेस
मूँदि दृग पाती तिन्हैं, माती फिरति सुबिसेस!

भूरि-निज-पिय-मूरती सौं हृदय जिनकै पूर
पात हिय ते सकल, तिनकौं परत गौन न दूर!
देत जग-मुख धूरि यातैं करत बन जे पर्व
पात सरबस हिय-बिसैं ही छाँड़ि अपुनौ सर्व!

नव - उसाम्बर की छटा तैं छनि छबीले - बार
छुअत - छिति कै छोर, छाए पच्छिमा, घन - भार,
मरुत कै मिस कहुँक जलकन रजनि - कच - तम - तोम
तुरत कै असनान कै परमान बगरत ब्योम !

पट - विभूसन की छटा तैं अरुन - छबि छिटकाति
चिलक - घूँघट सलज - चन्द्रानन छिपावति राति
नींद मैं जहँ मत्त अतुलित - कांति प्रिय दिनराज—
आइ ठाड़ी लाज - सौं भरि, पिय जगावन - काज !

हाँक तैं कछु सरत दीस्यौ काज नाहीं नैंक
तौ निसा नै नील-चादर खींच ऐकाएक
गुदगुदायौ गात पिय कौ, बहन लाग्यौ पौन
पलटि कर वट, बिहँसि पुनि दिनराज धार्‌यौ मौन!

कछुक बिकस्यौ निसि-हृदय कौ कमल-कोस-कोम
ओस कै जल-बिन्दु छिटकै तबहिं धरि उर रोस!
तब उठ्यौ अँगराई सालस, खोलि लालस-नैन
पर प्रिया कित? उत दुरी भजि हरम मैं लजि रैन!

लखन कौं निज चखन मानहु गगन कौ यह धौर
कान बहु पुनि होर निसि तैं, उठि बड़ै ही भोर
करि सनानहु, निपट-भीज्यौ बसन ही लै देह
तुलसि-तरु की करन पूजा स-मन-भगति-सनेह–

आइ चौरे पास ठाड़ी, लहति औरे ओप
पानि गहि रत्नालि जल कौ कलस, औचित चोप,
नेह - निरमल - भगति की मुँह धूप - छाँह अनूप
सरल - सैसव - भाव हू जहँ सहज चौगुन - रूप !

नाम मैं हृदयेस कौ धौं मानि मन संस्लेस
करति सरबस आजु अरपन तुलसि - पद - तल - देस ।
हृदय - सरबस खोय पुनि जौ जोय सरबस - हीन
धरति बरबस नयन - रस बस, ध्यान करि मन - लीन !

पात्र तैं जौ धरत धारा करन कौं अभिसेक
पिघल हिम - सीतल सु होतल बिरह - तप तैं नैंक
सलिल निकसत सोइ, बिकसत तुलसि कौ हृद्धाम
निपट रूपाभाव मैं बस, भाव ही मैं राम !!

अरुन - सुबरन - तरनि खेवत किरन की पतवार
उत भयौ रवि प्रकट पूरब - गगन - पारावार ;
बहुरि बहु चित चाय भरि इत परसि कर सौं पाँव
जुगति सौं पिय-मुगति भरि दृग - सुकृति मन बच-काय–

पाँय फेरें पलटि जौ लौं नाय सिर इक बार
सुनि परी निज द्वार तौलौं करुन एक गुहार,
"सफल इच्छा लहहु चित की, द्विजहिं भिच्छा देहु,
राम - रस अवगहन कौं कल्यान - मारग ऐहु" !

चपल - पद ही सपदि थिर भे, अतिथि - पद गुनि द्वार
पर न पाई पलटि, भीज्यौ निपट - पट जिय धारि,
कहति तबही तुरत, "बिरमहु तनिक ही - सी बेरि",
दौरती द्रुत - पद दुरी, बहु - अतिथई चित हेरि !

इत खड़ै इक संत प्रतिभामंत बहु गुनवन्त
बिपति - दव - जरजरित जग की जरनि कौं जनु अन्त;
लहत अति दुति उर धरयौ सुभ जगत कौ उपवीत
सुभग - नगपति - अङ्क जनु बिबुधापगा उन्नीत !

पट कछौंटा कटि कसै, इक हाथ मैं सुभ - दण्ड
माथ, चन्दन - चारु - चरचित, चमचमातौ, चण्ड;
सुचि पिछौरा धरित काँधे, अच्छ - मारा ग्रीव
अध - खुलै दृग सहज - सीतल सांति कै सुभ सींव !

धारि दूऽै कर कमण्डल सहज भिच्छा हेत
चकित - सै निज थकित दृग कौं फेरि इत उत देत
राम - चरितामृत - भरित अवगाहि मानस - लास
पतनि ही कै घर खड़ै अनजान तुलसीदास !

भगति - पारावार मैं सुसरार कौ संसार
दार - धन - परिवार सब गे बूरि जड़ - आधार :
हाड़ - मज्जा - माँस की सज्जा सजी नरदेह
बिसरि ताकौं राम ही सौं ललकि जोर्‌यौ नेह !

कथन जिन रत्नावली कौ अपुन - पथ - परमान
ताहि की परतीति तुलसी कौं भई अनजान;
राम - सिय की वृत्ति महिं नहिं सौर पावत और
मातु - पितु - सुत - पतनि नातै रहत एकहि ठौर !

सेत-सारी दुरति तबही रतन सारी-काय
भूरि भरि भिच्छान्न अञ्चल, निकसि चञ्चल पाँय—
कहति भीतर तैं "न पैहौ होन उन मन-थोर,
सहज भोजन कौ अयोजन है न ऐते भोर !"

उतर हू हँसि तुरत दीन्यौ तबहि तुलसीदास
"दान मैं यजमान हेरत कबहुँ जाचक-आस ?"
और ज्यौं ही तिन उठाई दीठि भिच्छा लैन
रम्य-रुचि-रत्नावली की दुति समानी नैन !

चाँदनी की चारु-चादर मैं चुराए गात
प्रकृति की जस अप्रतिम छबि दिसत बातोत्पात!
भसम-परिवृत-तपित-काञ्चन-दिपति-दीपित-देह,
दिव्य दुतिमति दामिनी धौं दमकि दुरति मेह!

नहिं हुतौ अलि तुलसि-चित जब राम-पंकज-पाद,
बिरस जाकै दरस बिनु थौ सरस-रसना स्वाद-
निरखि सौ मुख चखनि, कैसै रहत बिसरत तौहु
पै, दबायौ तुलसि तुरत हि असुभ निज मन-द्रोहु!

और इत जब अतिथि कौं भिच्छान्न-भर ही दैन
सकुचि रत्नावलि उँचाए निज निमीलित-नैन!
एक भिच्छुक!-'हाय रच्छक! अन्न-इच्छुक कौन?
अमिय-मूरि नहीं यही पिय-मूरती का मौन?

'कौन अङ्कुर किङ्करी कै अङ्क हैं सिल - भाल
और कहुँ जौ साँचि—?' रत्नावलि भई बेहाल;
मूँदि पुनि दृग, हिय निहार्‌यौ दिनन कौ अध्येत
तरुनतानत - पिय - बदन - बिधु बिरह - सरिता सेत!

सुमुख - प्रतख - परोच्छ - तौलन लखति पुनि चख खोलि
पाइ समता बल्लुक, खोलति मूँदि पुनि दृग - लोल
अमित - अचरज सौं भई गुन - खचित धनु - अधरालि
फारि दीदे, लाज तजि सीधै लख्यौ रत्नालि!

लहत ही चित चेत धँसक्यौ रेत - धीरज - सेत
अश्रु - नारै बहन दृग - द्वारै लगै हित - हेत;
और जब पहिचान महिं रहि नैंक सङ्का नाहिं,
तुरत द्रुम - कर - सी परी भू, पाद पंकज पाहिं!

छिटकि छिति छहरयौ, भर्‌यौ · पट अङ्क मिच्छा - अन्न
और इत, लखि तुलसि मुख भो कमल कुहराच्छन्न !
तदपि दृढ़ करि छदम कौ निज भाव, बोलै बैन,
" करति हा ! हा ! देवि ! तुम यह कौन अजुगत ऐन ?

"सिद्धि की विधि विदित नैँक न, निपट-सरबस-हीन
भाग्य-हत भिच्छोपजीवी, दलित, दारिद - दीन !
आस पूजै कौँ न दूजै मरम हमरै पास—
अहँहँ ! —बिरमहु, धरहु जनि पद, निपट-मिथ्या आस !

पर रही जिनकौँ सुनन की तिन सुन्यौ नहिँ नैँक
कुटिल-लिपि रहि भाल मेटति युगल-पद-तल टैक
और तबही निपट धरि कै, अचल ठहै रत्नालि
रहि चढ़ावति पदुम - पद दृग · सलिल - मुगता - मालि !

बढ़त कलकल - मुखर - खगकुल - विपुल - पलपल - सोर
और आवत - जात जन कौ अधिकतर गुनि जोर
अतुल - सिहरन - सी बसी बस तुलसि-व्याकुल-चित्त,
"उठहु देवी ! लेखि पद-सेवी, तुम्हैं अरि-मित्त—

"सकत दूखैं भाव बहु, हिय-भाव मूखै मानि !"
"रखत धोखै अजहुँ तुम प्रभु ! ढँग अनौखै ठानि !
पाय चित की चाय, मन - बच - काय - ध्याए पाँय,
अब कहूँ तजि सकति इनकौं, खुद कहौ सति - भाय !

"लहन पिय-पद, जन-समाज-सुदीठि मैं जौ लाज
आज ही तैं तौ रहै वह मोर मस्तक-ताज !
नहिं सिकारौ नाथ जौं लगि, 'हौं तिहारौ ईस !'
प्राण वर लैहैं, न पै हटि आप पैहैं सीस !"

तब न तुलसी कै सकै रहि छदम कै छल - भाव
ज्यौं कहै खिसियात ज्वाँरी हारि अपुनौ दाँव !
"करहु, हठ जनि, उठहु, रूठन कौं न कछु मो पास
अधम तुलसीदास ही यह राम - पद कौ दास !

"देहु तौ कछु देहु भिच्छा औ बिदा करि देहु,
स्वजन - पुरजन - हृदय - मधि उपजाहु, जनि सन्देहु !
कल न पाती देखि दृग, द्वै टूक छाती होति
पै, न तिय-गत-प्रान-तुलसी की रही उद्योति !

"अश्रुकन कौ मूलधन हू नयन मैं नहिं मोर
रतन गुनि कै दीन्ह स-जतन राम-पद मैं ठौर !"
तब उठी रत्नावली लीन्हे बदन निज म्लान
हिम - तुसाराच्छन्न, पावन - प्रातरब्ज - प्रमान !

हृदय - बेदन कौ कहन संतोलि मानहु मोल
कल - कपोल - तुला टरै बहु गोल दृग - जल - लोल ;
देखि तउ जनु अतुल - दुख यह तुलन नैं क न आत
दृग - पँसारी डरत सारी बँटखरौं की पाँति !

ज्यौं हि तिन निज अधर खोलै कहन कौं कछु चाहि
कण्ठ भो अवरोध, औ कछु बचन निकसै नाहिं !
तब परी पुनि तुलसि ही कौं कहन कौं कछु बात
तौ कियौ हिय निज कठिन, ससि-कांत सिल की भाँति,

द्रवति जौ ससि की सरल-कर-निकर ही कौ पाइ
पै न रवि की खर किरनि कौं गिनति कौनहु भाइ
"धरहु धीरज बोधि हिय, परिहरहु मन कौ मोह
निपट - नसवर जगत कै सम्बन्ध - छोह - बिछोह !

"पै प्रभो ! जौं लगि मनुज कै प्रान तन मैं आहिँ,
पतनि-पति-सम्बन्ध-बर तौ निपट-नसवर नाहिँ;
तुम बिकासी प्रीति दासी सौं प्रथम जौ नाथ !
सौ रही हतभागिनी कौ देति अबलौं साथ !

"छीनि सौ ही पूँजि चाहत करन मौकौं छार !
कछु न जीवन-माहिँ तुम-बिनु हाय ! प्रानाधार !
रहित पति - पद - अनत कितहूँ पतनि की गति नाहिँ
लेहु सँग बन, धौं सदम, जहँ पद-पदम की छाँहिँ !"

धीर धरि भे तुलसि नीरद-भीर-सै गम्भीर
सहज उचरन तब गिरा लागै महामति - धोर,
"बिसर जनि तुम जाहु, तुम्हरौ करि कह्यौ परमान
तुलसि, तिय-गत-प्रान नै निज-पथ लियौ यह मान !

"'ज्ञान कै आगार जाकी करत नहिँ परतीत
हाड़-मज्जा-माँस ही सौँ' देह तव परनीत
राम-पद ही चित धरन कौ तव हुतौ आदेस
सफल लहि निज आस ही, क्यौँ धरति ऐतो क्लेस !"

"राम-पद चित दै लह्यौ वर तुम स्वजीवन-सार
पै कहाँ गति पतनि की पति-पाद-पङ्कज-पार ?"
"बनति पै, वह सहज-गति कौँ पाँय की जञ्जीर
देत यातैँ निरत हरिपद सकल नातै चीर !"

"तौ करौ अनुगामिनी निज चरन की किन नाथ ?
तप न बाधा कहुँ परैगी रहत मैरे साथ !"
"अगम-जन-मन-भेद-गति-मति जगत जानै कौन ?
करत जे हरि-चरन रति, ते तजत तिय कौँ भौन !

"सकल - छलनागार - ललना, सबल - स्मर - हथियार,
बरछि-सी अनघात पहलू करति तिरछी मार !"
लेखि काञ्चन-कान्ति-तिय कुल होत लाञ्छन-सप्त
भसम आपुहि आपु ह्वै हिय-बिसम-ऊसम तप्त—

करन लागी अगिनि-गिरि-सौ प्रकट झञ्झा-झम्प
पै रह्यौ तन सिहर कर ही, बस भयौ भूकम्प !
ध्वंस ही सै पुनि कढ़ै रत्नालि-मुख तैं बैन,
"समुझि निज कौं नाहिँ, पर की समुझ कौं बेचैन !

"समुझि अन्तर-मरम प्रथमहि करन आतम-ज्ञान
लहन परमातम - महातम कौं प्रथम - सोपान !
जे न जानत निपट इतनौ बिरथ तिनको जोग
जगत के तजि रोग, भोगत मन - प्रतारन - सोग !

"मिलत असमञ्जस न माया और रामहु नाहिँ,
चित्त चङ्गा तौ कठौती माहिँ गङ्गा आँहिँ !"
कछुक छिन तौ तुलसि कौँ रहनौ पर्‌यौ ही मौन
सोचि कछु, उनमोचि संसय, बचन उचरै लौन !

"सघन घन कौ पीठ डारै चिकुर-मेचक-भार,
सुचित-जग की चेतना पर मोह चादर डार,
कबहुँ चन्द्रानन दुरावति कबहुँ करती दीठि,
छिटकती छिति-छाति पै ज्यौँ रचति छलना-सीठि,

"चपल-चितवन की चलावति चमचमाती-तैग
अयस-पावस-सरवरी-सौ धारि तम कौ बैग
रसमि कर कौँ तमस-उर मैँ करति छय लय-लीन
हा ! अहे अस तिमिर-मूरति नारि-मूरति-पीन

"फनिनि-लौं तिय कौ करति जौ भाव ही निज भच्छ
सुच्छ-मति-धर ताहि राखैं अच्छ क्यौं निज-पच्छ ?"
"तमस लहि जे होत आपुहि आप तमसाकार,
बुझन कौं तहँ है कहाँ आलोक की प्रभु ! धार ?

"कोकनद कौं जौं विकासत, सत्य, अरुनालोक
सपदि हरतौ सरवरी कै तिमिर कौ घन-ओक,
रुचिर करि परिवेस उसा-भेस निसि प्रकटात;
सत्य जौ परकास, तमतैं कबहुँ नाहिं डरात !

"और तरुनी, सकत करि जौ तरनि-सौ आलोक
ताहि कौं तुम तिमिर-पटतर देत कौने सोक ?
दासता करि काम ही की बिसरि मन कौ राम,
हाय पति ! आए हतै तुम भामिनी कै धाम !

"बहि अँधेरे प्रभु ! दिखायौ कौन नेरे दीप ?
मुगति-दुति हू तुम लही पिय ! तियहि कै हिय-सीप !
और तबतौ प्रभु ! हतौ मम तरुनता - आरम्भ
रहत सम्भव जहँ सदा ही मोह - उन्मद - दम्भ !

"नारि की सिव - सत्य - मय सौंदर्यवारी देह
गुनत कुत्सित हृदय भरि जे कपट-छल-सन्देह,
लुकत उलुकन - सै सदा ते दिवस कै आलोक
और निसि मैं खोलि दृग दुति हेत पारत सोक !

स्रौन करि तिय - कथन बोलै तुलसि अकपट बैन
"हाय ! बावरि ! नागिनी कौं गनति दाँवरि ऐन !
सुघर जौलौं जगत मैं तिय - देह - दुति ही धन्य
पै, न दुति की विकृति-सी कछु वस्तु कुत्सित अन्य !"

"चरम ही मैं नारि कौ तुम मरम लेखन जात!
चरम-चख-पर दिसत नहिं किन हृदय कौ संज्ञात?
चरम-विकृतिहि लगत तुम्हरे मरमतम मैं सत्त
नारि-हिय कौ द्रवत अमरित किन नहीं तव चित्त?

"क्यौं न सोचत, चाम तिय कौ विकृत जब ह्वै जात
चरम-चख नर कै तबहुँ का दीप्ति वहि बगरात?
हाय! पति, कैसे कहौं, यह पत्नि-पति-सम्बन्ध
देह-पुरतौ गनत जुरतौ, ते महामति अन्ध!

"ढोल-मूरख-सूद्र-पसु मैं गनत नारी जाय,
और अधिकारी कहावत ताड़ना की हाय!
गुनत तिय-तन प्रबुध चेतन आतमा किन नाहिं?
बोध सद्सत तिनहु कौं, सौ क्यौं न मानस आहिं?

"बसि इतै दिन हाय! बन किन नाथ बान्यौ आप
रहति दरसक-दृगनि माया, भरति भरमक पाप!
जौ लखौ पीतर निपट तौ स्वर्न कौं नहिं रोस
मोल ताकौ घटत कबहुं न, दोष कौ बस दोस!

"और पीतर कौं कहूं हीर लाभै ना हेम
बर खरीदौ हेम ही सौ मोल लै सब-प्रेम,
तौ न पीतर कौ बढ़त कहुं साँचि तैसौ मोल
देत इन दृग-देस ही तौ देत माया धौल!

"जगत लखियत जड़ अजड़ जित, सबहि चेतन-प्रानु
बनत जिन परमानु, तिन मैं सकति सत-मत भानु!
नास जिनकौ दिगत, ते नहिं नास फुरि वै जात
उड़त अणु-रणु गगन छिन मैं, दिसत छिन छिन-गात।

"नास की छाया कबहुँ गिल सकनि सकती नाहिँ
ताहि कौ तौ समुच-सञ्चय अछय-ईसुर आहिँ !
तब निरीसुर कौन जग ? औ गिनत किनकौँ धृन्य ?
बादि खोए जोग, रोए जाइ हांइ ! अरन्य !"

सलिल-धारा उपटि तब हिय-कूल पारावार,
पूजती पति-पाद पावन-मुकुल-मञ्जुल-हार,
मुकति-भूत पुनि सुकति ऐसै खोलि आयत-नैन
लगि निहारन अपल पिय-ससि-बदन चिन्ता-ऐन !

हेत-हित सित, असित दुख-हित, रोस-हित औ लाल
अमि-हलाहल-मद भरै रत्नालि कै दृग-जाल !
सजल-बादर करकि बिजुरी करति कहुँ विस्फोट
रतन दृग-तारा भई सौ, तुलसि-हिय-द्रुग-कोट !

पतनि को खर-बात निज-अवसान हेरि समीप
तुलसि-पलकाञ्चल दुर्‌यौ उत दिपत दृग-दुति दीप !
छनत आवत निकसि जस उठती सिखा-धूमालि
डरति तुलसी-गात भइ कल-अश्रु-जल-धारालि !

रतन कै टूटै धरकतै उर-मुकुर कै माँहिँ
निरखि निज की छिन्न सत-सत खण्ड वारी छाँहिँ,
बधिक-बस-निरुपाय-खगलौँ लेत दीरघ साँस
पास, चौरे हारि बैठै दीन तुलसीदास !

निरखि पिय-मुख छबि-पटी पर काल-मसि की तूलि
रेखती निज अङ्क, तौ निज हृदय कौ दुख भूलि
पाँय धरि भू बैठि, लागी रतन उचरन बैन,
—कौन जानत अगम-तिय-हिय परत कासौँ चैन ?

"बिलग मानहुँ जनि, प्रजारन-जोग मोर कपार !
और हिय मैं धधकतौ इक अगिनि कौ आगार;
भूम-दव लौं जरति हिय, व्है भसम आपुहि आप
स्वरस-हीना, बहु मलीना हौ भई सन्ताप !

"जान्ती नहिं मो अहै अध्यात्म-जग का पूँजि ?
छाँड़ि पभु ! भवदीय-पद नहिं वस्तु जानी दूजि !
प्रकट आभमत जौ कियौ, सौ ही हतो मो-आस
औ सँजीवनि मरति-तिय की, जब न पिय-पद पास !

"तम-अगारी, क्षुद्र, अच्छम निबल नारी जाति;
छमहु बहु अपराध मम, अरु समहु चित की क्रान्ति,
बिलग, पै, पग-छाँहिं तैं अग-जग करौ जन नाथ !"
और पति-पद पतित भो, घन-बलित बिधु-दुति-माथ !

ऐक दीरघ-साँस खैँची बिबस-तुलसीदास
मनहु यौँही करत चाह्यौ सकल-भ्रम-उदबास
पुनि सम्हारत चेत, गहबर-कण्ठ करि हित-ऐन
निपट अकपट अटपटै-सै तुलसि उचरै बैन

"बदति तुम सत रतन! जाकौ नाहिँ सम्भव-काट
रजक-रासभ-लौँ न पायौ हाय! घर वरु घाट
चरम-मानव मरम गुनि, भव-धरम कै संस्थान
जगत कलि-मल हरन मानस वरु कियौ सुधान

"मातु, पितु, पति, पतनि, सुत, हितु, भ्रात, अरि अरु मित्र
जगत जेते आहिँ नाते ते समानै तत्र
आदरस करि, सरस करि, हिय परसि दीन्यौ ठौर
मुक्त-नारी-तेज, पै, नहिँ चित समान्यौ मोर

"पुजति जित नित अमित जाया रमत तित सुर-बृन्द
करन-जन-कल्यान सहजहिँ हौँ न समुझयौ मन्द!
मनहिँ मोरे, मोह-मनमथ की मिटी माया न
रूप की कल्यान-सकति न नैँक पहुँच्यौ ध्यान!

"हाय! इन आँखिन लख्यौ अजहूँ नहीँ वह भाव
गुनति अजहूँ तियनि कौँ बस 'हाव-भाव-बिभाव'!
कनक कौँ पीतर कहत नहिँ घटत सुबरन-मान
परत समुझनहार पै, यहिँ सहन निज की हानि!

"देत कहुँ धौँ मोल सुबरन कौ अजानै आप
ल्याइ धोख्यौ आत घर लै निपट-पीतर-पाप!
तजत ग्रह बहु करन निग्रह, करत बिग्रह-मात्र
ज्योँति तिनकैँ हृदय की परतीति की नहिँ पात्र!

"सीस पै ससि, भाल दौ-दृग, ईस, सत-दुति-हेत
मदन कौ करि कदन, बिसकौ सदन निज-तन देत!
समर मैं ललकारि तम कौ, फूँकि तमचुर-तूर
धरत ताकौं ऐक ही कर, दीपि-दुति-धर सूर!

"घेरि तम-निधि दीप-दुति तौ दिसति ज्यौं रखवार
असि-सिखा कर, अरु तरै लै तिमिर कौ तूमार;
परति जित नहिं दमक, दीसत तितहिं तम कौ दैत्य
काढ़ि जनु निज दाढ़, बाढ़त सुचित-चित भय-सैत्य!

"सरद-ससि जौ सित-सुधा-सी दुति पसारत रैन
परत रवि-पथ, सहज दीसत सघन-तम कौ ऐन;
चाँदनी हू सकत करि नहिं करत जौ प्रति राति
कलुक छिन लौं छिपति दिन-छबि, औ छपा छिति छाति!

"लहन यातैं सहज-सुचि-दुति हरति तम जौ धाय
रतन! परि है पुनि बिदा मोंहिं करन तौंकौं हाय!
अमिय-बिस पहिचान मैं जौ रहति मति अति छाग
अभय-हित है उचित ताकौं अमृत हू कौ त्याग!"

प्रात, जैसैं कठिन-हिम पै, परति दिनकर-ज्योंति
प्रथम सत-सत भानु की तहँ प्रकटती उद्योति,
किरन कौ सुबिलास पाछै, ढरत आछै रत्न
छिनक मैं पुनि ढरत सरबस छाँड़ि निज-तन-प्रत्न!

भाँति तैसिय, तुलसि कै मुनि सजल-मृदु-मधु-बैन
प्रथम तौ रत्नावली कै भे चमत्कृत-नैन;
अयस-गाथा पुनि रच्यौ तहँ ज्योंतिमय-उल्लास
नीर ढरि ढरि तुरत भे पुनि पलक-ओट-उदास!

भरि दृगञ्जलि मञ्जु-दृग-जल-पुञ्ज कै कल-कञ्ज,
करन रत्नावलि लगी अर्चन पिया-पद मञ्जु;
बहुरि रुदनारुन अँसौहैं-नयन पिय-मुह जोह
लखन लागी तुलसि-मुख-पट निस्क्रमन-लिपि लौह !

रतन कौं लखि निरखती निज नयन ही कै सैन
तुलसि हू नै पलक-आकुल नत किए तौ नैन!
हिय भयौ तिनकौ उपल ज्यौं जलधि कै उपकूल
जहँ पछारैं खाइ टूटति बिकल-बीचि समूल !

उन लहर मैं नाहिँ केवल नारि कौ दृग-नीर—
गरजती सह-रोस चपला घोर गुरु-गम्भीर;
होत धीरज-पोत जहँ पल माहिँ चकनाचूर
बूड़ि तहँ सिर छिनक पुनि सिल करति ऊँचौ कूर!

कहन की कछु कामना कौ करति मनसाधीन
रतन नै निज सिर चढ़ायौ तुलसि-पद रज-लीन !
उलटि लट-सँवार लागै वहन दृग-सरि लोल
अवलि अलि, कलि कमल अँगुलिन करति धौं कल्लोल !

और मानहु लहन अन्तिम दरस पिय-मुख-चन्द
रतन नै निज दृग उँचाए सजल-धीरामन्द;
धूप - रञ्जित - धाम मैं ज्यौं बरसि घन रूपाभ
क्षितिज प्रकटत इन्द्र धनु-उद्योति सुचि-रुचिराभ-

रम्य - रुचि - रत्नावली कै अथक - दृगजल - धौत
निपट गौरे मुख भई प्रतिभास वाही ज्योंत !
कछु नयौ-सौ रङ्ग उनयौ तुलसि लेख्यौ नैन
एक आवाहन करत जनु अतनु व्याकुल - सैन !

सुमन-धनु-गुन खैँचि जनु साँध्यौ इतौ तिन बान
टूटि जिहगी, भौँह ही की दिसति बङ्क कमान;
सर धँस्यौ पुनि पलटि जनु कमनैत ही कै गात
हाइ ! इन नैननि लह्यौ कबहूँ न सुख कौ साथ !

ऐक आकुल - मौन - अनुनय निबसती दृग - भौन
बिनु सहारै, पै परी वह निपट - मुरछित - मौन !
बारि ढारत जबहि भे उत चारि बारिज - नैन
तुलसि नै पल - माँहिँ हेरै नैन - घेरै सैन !

भामिनी कै भव्य - भावनि कै भगति - परभाव,
तुलसि के हृद्धाम मैँ भो ऐक गहिरौ - घाव
तुरत कीन्हें बन्द दृग संकोनु की भरि भीति
रतन हू कौ तब भई मन विदित पिय की प्रीति !

तुलसि - हृज्जलधि - तल भो उभ्दूत झञ्झा - दूत
अश्र - बुदबुद उदित भो इक नयन - तल आहूत;
पलक - पुटि तैं उपटि पुनि प्रकटित भयौ सुभ - गाल
डरकि औ रत्नावली दृग - सीप कौ भो लाल !

चित्त चातक की बुझी जनु अमित - अतुलित - प्यास
कृपन - धन लौं रतन नै सञ्चित कियौ वह आँस;
समुझि मन, पुनि - पुनि कहन कौ कछु प्रयोजन नाहिं
परसि पिय - पद - पदुम बारक दमन करि मन - चाहि –

उठि सिधारन गेह कौं ज्यौंही कियौ तिन व्यौंत
तुलसि हिय-सिल तूटि चूर्‌यौ रतन - हिय - धृति - पोत;
रुदन निदरति, पदनि कौं, पै करि सदन की ओर
बिबस, सरबस दै चली जनु सेस आसा - तोरि !

नहिँ हुती हिय तुलसि कै कहूँ सरल ऐती छूट
तउ सकी नहिँ नैँक तिनकै हृदय की कलि फूट!
धरति डगमग पाँय इत जब रतन पहुँची द्वार
सुनि परी परिचित तबहि वह 'रतन' तुलसि - गुहार!

ठिठकि ठाढ़ी तित भई टुक बिनु फिराए दीठि
कठिन तुलसी कौ परी औ कहन निज मन - ईठि;
"प्रथम ही तैँ मो अधम कौ तुम छम्यौ अपराध
बिछुरति - यहि बेर बारक करहु कारज - साध!

"काम की परिसेवना तैँ बिरत करि मोहिँ देवि!
तुम बनायौ अपुन महिमा राम - पद कौ सेवि;
बयस बस आधी पतनि कै सकल साधै काज
ओर पति कै काज, मोरे भाग रहि बस लाज!

"सबल बहु निज मन कियौ तुम अपुन साधन जोर
पै न सम्भव अछत तब - दुति राम - रति मन मोर;
जानि जिय, जनि करहु जन पै रतन ! निज - मन रोस !"
भो सजल - घन - तुल्य - नीरव गद्गदित - गर घोस !

बहु सम्हारति ढरत दृग तैं आँसुवन कौ तेज
औ, गरै कौ करति संयत अमित सकृति सहेज,
साँस दीरघ लेत बोली रतन तबही मन्द
"पतनि कौं आनन्द है प्रभु ! पतिहि के आनन्द !

"अहनि निसिदिन देत सरबस सेंत ही सब नारि
लहन काहू की न पलटै माहिं करतीं आरि;
समुझि पतिव्रत - सिद्धि कौ बस एक साधन नित्त
रहति पति - पद - कामना हू कामिनी कै चित्त !

"देव-पूजा पुहुप की ज्यौं रहति सुचिता ध्येय
त्यौंहि पति-कल्यान आहै नारि कौं प्रज्ञेय !
है कहा जौ अब रहैं पद, दूर कैंधौं पास,
पात पति हु न करि कबौं पति-भावना कौ नास !"

और तुरतहि छिपत, नैंक न रतन कीनी बार
दुरति जस सौदामिनी द्रुत सजल घन कै पार!
इत भई हिय तुलसि कै इक लूक जैसी लीक
छिनक ही मैं जौ भई तम-तोम की परतीक !

एक ही छिनु जनु भयौ संसार सारौ और
सौर-घर कै छौर हू भे तुलसि-जुग-दृग-कोर;
आदि तैं बहु अन्त लौं जहँ करत दृग पैसार
सकल दीस्यौ तुलसि कौं बस सघन-घन अँधियार.

जौ हतौ निज माथ चमकत अमित - खर - दिननाथ
सौहु तिनकै भाव बूर्‌यौ तिमिर ही कै पाथ!
पर तुरत ही तहँ चली सौदामिनी की तूलि
केलि लागीं करन किरनैं रङ्ग मैं निज भूलि!

एक छिन मैं तमस मैं भो प्रकट ज्योंति सरूप-
यत्न - कृत रत्नावली कौ रत्न - राजित - रूप!
तिमिर - परिवृत तुलसि कौं जनु ज्यौंति कौ भो लाभ
दीप्त - दृग - गत देस बगरी रतन ही को आभ!

राम हू तिन तबहि हेरे कहुँ दिखाई देत
पै न रतनाकर - बिसै कहुँ ऐक मनि कौ हेत;
मूँदि तुरतहि तब निहार्‌यौ अपुन दृग हिय - ऐन
पै प्रकट तितहूँ भई छाई हुती जौ नैन!

"हाय ! ऐती साधना हू आज भइ बेकाम
बाम - कर उर - दाम उरझै हृदय हू कै राम !
लखत तुमतौ भगत कै हिय भूरि अपुनी प्रीति
करहु सीतारमण ! मेरौ हृदय - भीतातीत !

"रहति तिय-हिय मूरती पिय की भरी बसु - जाम
सकत जाया की न माया छूटि यातैं राम !
त्यौंहि तुमकौं हू लग्यौ निज भगत कौ प्रभु ! रोग
तौ न मो अभिजोग ही क्यौं तुव - छमा कै जोग ?

"रहनि राउर राम ! तौ तब, जब न हिय मैं मोर
अछत तुम्हरै ऐक हू छबि पाय कबहूँ ठौर !
त्याग हू मेरौ न तौं सौं बनि सकैगो नैंक
पतित - पावन तूँहि तौं सौं पतित मो सौं ऐक !"

तबहि पलटन कौं कियौ तिन लगन कौं निज राह
पै, जम्यौ जनु कठिन - हिम पद, रकत कौ पर वाह !
करत कोरि उपाय पै, जनु नैंक उठत न पाँय
और हिय हू मैं उठत कछु हूल - सौ व्है हाय !

वेदना रत्नावली की जौ परी दुख - कैद
निपट घर कै पार की बहु भित्ति कौ करि भेद
कान मैं जनु तुलसि कै इक आन भइ उद्घोस
तुरत तिन अँगुरिन किए, तौ मुँदित निज स्रुति-कोस !

जल-बिद्रोहित तरफराती मीन कै परमान
भूमि-तल पछराती, पसरति रुदन मनि की खान
राहु-रोधित-रतन की राकेन्दु-आनन-ज्योंति
प्रगटि पिय - उर - मुकुर पुनि व्है राम - रति की सौति !

"बिलग जौ लगि पग न ह्वै हैं त्यागि इत कौ मोह
हाय ! तौं लगि है न सम्भव मिटन मन कौ द्रोह !"
सोचि यह, उनमोची लोचन रतन - रोचन - आँस,
तुलसि कीन्यौ हृदय तैं जनु पतनि - हित - उदबास !

और पुनि, धौं राम कौं, धौ रतन कौं करि नौन
धरत डगमग - डग डगर पै अडिग - तुलसि मौन
बढ़न लागै बिपद - बाधा - हीन हरि - पद - आस !
भगत रामानन्य तुम भे ! धन्य तुलसी दास !!

रतन हू कै दीप कौ ध्रुव ऐक निसि निरवान
तुलसि हू कौ निपट - ध्रुव खगयान - पद - अभियान !
मिलित दुहुँ की दिपति जग मैं पुरुस - प्रकृति - समान
करत रहि है अमित निज, प्रतिभास प्रभ, ध्रुवमान !

● हरि ॐ ●

टिप्पणियाँ

पृष्ट १ (पंक्ति १) तरुन-रवि=मध्याह्न के सूर्य, तुरग=अश्व (पंक्ति २) पेखन=देखने (पंक्ति ३) धरनि=धरणि (पंक्ति ४) व्यजन=पंखा (पंक्ति ५) ताय=अग्नि (पंक्ति ७) बबूलनि=बबूले-झोंके (पंक्ति ८) कहलान=व्याकुल ।

पृष्ट २ (पं० १) सायास=यत्न सहित (पं० ४) नीरोपि-उखाड़ना (पं० ६) सून-पथ धरि दूनगति=शून्य-पथ में दुगने वेग से, मानों स्वयं कोई शर हृदय धनुष की कामना रज्जु को खींचकर, अपने चाप को छोड़ प्रचंड गति से दौड़ रहा हो (पं० ६) सेद=पसीना (पं० ११) सेखर=भाल ।

पृष्ट ३ (पं० ३) हरबरै=हड़बड़ाये हुए (पं०५-६) प्रातः ही... उद्भीति=(आज) प्रातःकाल ही पिता के घर आई प्रियतमा की प्रीति विरह-ज्वर की अग्नि के लिये घृत के खतरे के समान सिद्ध हुई (पं० ७-८) भ्रष्ट ह्वै... मैं दीन=दृष्टि की क्रान्ति रेखा से भ्रष्ट हो जाने के कारण तथा (प्रियतमा की) आकर्षण-परिधि से हट जाने से तेज उल्का के समान (अपने कक्ष से बिछुड़ कर) दीन भाव से ससुर-गृह में छूट पड़े !

पृष्ट ४ (पं० १) आगौन=आगमन (पं० २) कञ्जाञ्जलि=

कमलों का समूह (पं० ३) तुन्द=घोर, सानन्द भंजति दुन्द=आनन्द से सब द्वन्द (दुःख) का नाश कर रही थीं (पं०४) घातैं=चालें (पं० ५) अपर=दूसरी (पं०८) मैन=कामदेव।

पृष्ट ५ (पं० १) बिरम=ठहर (पं० ३-४) रुप-लालस...अवसर आस=उधर अधर-रस की प्यास लिये एक रुप-लालस अलि निज चषक भरने को पास ही अवसर की आशा में ताक रही थी! चषक=प्याला (पं० ६) पट=किंवाड़ (पं० १०) कच्छ=कक्ष, कमरा। जनजनायौ-ज त=मालूम देता है (किंवाड़ों के पक्ष में) (पं० १२) मटकि-मटकाकर। सटकौं-सरक आईं।

पृष्ट ६ (पं० १) छिनक-एक क्षण में। (पं० ३) सपदि-शीघ्र ही। (पं० ६) बिकलति-व्याकुल होती हुई। (पं० ७) नौन-नमन, नमस्कार। (पं० १२) अरक-सूर्य। खर-कर-निकर=प्रचण्ड किरणों का समूह।

पृष्ट ७ (पं० ७) जस-जैसे ही। (पं० ८) बिबस तापस... साँस=इस विवश तपस्वी (सूने) हृदय में विषम लम्बी साँसे ही बसी रह गईं। (पं० १०) अँसूऊपर... जलधार=बिरहाग्नि [की तीव्र ज्वाला] में ऊपर का सूर्य और नीचे की धूल तो जलधारा के समान [शीतल] हुई! (पं० ११) छोभु-क्षोभ। (पं० १२) जलद-जित-नभ=बादलों द्वारा पराजित आकाश।

पृष्ट ८ (पं० ३) मैन=मर्दन। (पं० ५) गी भाजि=भाग गई।

(पं० ६) पौरि-दरवाजे। (पं० ७) अलिन-मन=सखियों के मन में। (पं० ६) हूलमी=तीक्ष्ण शस्त्र की नोक को चुभोने की पीड़ा के समान। (पं० १२) बिसिख=बाण भाथ=तरकस, तूणीर।

पृष्ट ६ (पं० ३) जुरातौ-जुड़ता। (पं० ४) तरनि=नौका। दुरित-पूरित देह=पाप से भरी हुई देह के लिये। (पं० ५) राहु-मुद्रा-रोच=राहु के चिन्ह का प्रकाश या छाया। (पं० ७) जरद=पीला, झँटि=झाड़ कर। गरद=धूल। सरद=ठण्डे पड़े हुए। (पं० ८) सरजाम=प्रबंध, सरंजाम। (पं० १०) नीठि=निष्ठा।

पृष्ट १० (पं० २) बूरन-डूबना। कर अनेरै काट=अनाड़ी हाथों से काटता हुआ। (पं० ३) मीच=मृत्यु। (पं०४) तरनि=नौका। रहनि=कृपा। (पं० ६) कृकलास=गिरगिट के समान रंग बदलने वाली। (पं० ६) ओक=घर। (पं० १०) कोकनद-कमल। (पं० ११) बिरस=जिसके ऊपर दूसरा रस चढ़ गया है।

पृष्ट ११ (पं० ३) प्रणति=नमस्कार। (पं० ४) सौध कौ=मकान को। औधलौं नमि=अयोध्या के समान नमस्कार करके। (पं० ५) अँथगिरि=अस्ताचल। (पं० ६) सानु=शिखर। (पं० ६) रोहित=चढ़ा हुआ।

पृष्ट १२ (पं० ८) गगन कै...पीठि=गगन के पथ में नक्षत्रपीठ से पीठ छुआते हुए प्रवेश कर रहे थे! (पं० ६) औनि=पृथिवी। (पं० १०) राम रट...सार=तुलसीदास को

भी राम-नाम की रट ही हृदय में शुभ चन्द्रोदय के समान (अन्धकारनाशक) हुई !

पृष्ट १३ (पं० ५) धृति-धैर्य। (पं० ८) आधि=मानसिक पीड़ा।

पृष्ट १४ (पं० १) रीत्यौ=चुकगया, समाप्त होगया। तरनि=सूर्य। (पं० ३) रसा-पृथिवी। (पं० ४) कोद=दिशाओं में। (पं० ६) पाथोद=बादल। (पं० ७) कुहक=जादू, अलक्ष्य शक्ति। हथिसारि=हस्तिशाला। (पं० ८) भभरि =भड़भड़ा कर।

पृष्ट १५ (पं० १-२) छिनक छबि...धूँआधार=या छिनक छबि [बिजली] को झपट कर एक ही क्षण में छीनने का निश्चय करके नभ भूमि में दिग्गज चारों ओर धूँआधार युद्ध कर रहे हैं। (पं० ३) प्रतीची=पश्चिम में। रवि-नीच-मृग-मारीच=सूर्य रूपी नीच मारीचि-मृग को। (पं० ४) राम=राम [कृष्ण वर्ण संध्या]। (पं० ६) मधि=में।

पृष्ट १६ (पं० १) मार-कामदेव। अतिचार=अत्याचार। कान्तार =जंगल। (पं० ३) मौलि-मंगल=शुभ मस्तक पर। बिथुरि=फैलाकर। (पं० ४) सुर-सरित=गंगा। (पं० ५) रोसारुन=रोष से अरुण। (पं० ७) दामिनी.. दुरदण्ड =दामिनी-द्युति से दीप्त ऐसा अग्नि नेत्र दुर्दण्ड-दव [अग्नि] प्रवाहित कर रहा है। (पं० ८) ज्यॉतिरिङ्गन =खद्योत, जुगनू। (पं० ९) पौन पन्नग=पवन रूपी सूर्य। (पं० १०) करका-ओलों का आघात। बरद-

वृषभ, बल। (पं० ११) तरु-दाह=वृक्ष का जलना। स्मर-दाह=मदन दहन!

पृष्ट १७ (पं० ५) दिवस निसि कै सन्ध=दिवस रात्रि की सन्धि मेल [संध्या]। (पं० ७) पसारै-फैलाव, विस्तार। (पं० ८) पीन-गभीर, घनी। (पं० १०) हेम-स्वर्ण।

पृष्ट १८ (पं० ४) धौर=समान। (पं० ७) उत्क्रान्त=आंदोलित। (पं० ८) ध्वान्त=अन्धकार। (पं० ६) दीपती=दीप्ति। (पं० १०) घेरि निज भुज बाथ=अपनी ही भुजाओं के बन्धन को घेर कर। (पं० ११) साछि=साक्षि गवाह। (पं० १२) बैहरि-बाह=हवा के प्रवाह में। पाछि=पीछे, पुनः।

पृष्ट १६ (पं. १) छौने=बच्चे। (पं.२-३) तुलसी औ····· को दण्ड = राम सीता के समान तुलसी और हरि भक्ति का गठबन्धन जोड़कर, मानों खण्ड खण्ड होकर शिव का धनुष पृथिवी पर पड़ा है। (पं. ७-८) पर सुधर···हीनाभ = परशुराम के समान उसके अधर सफेद पड़ गए हैं (क्योंकि, रामने उनके धनुष की न झुकने वाली ज्या को खींचकर उन्हें परास्त कर दिया था!) शिथिल झुकी हुई आँखें उसी अक्षय गुण जैसी हीनाभ होगई थीं! दृगता = दृष्टि। (पं. १२) अस्ति-धरि=अस्तित्व मात्र धारण करने वाली।

पृष्ट २० (पं. १) सरद-राका-सी=शरत्पूर्णिमा-सी। (पं. २) अघट, औचक=अकस्मात् न घटनेवाली बात। (पं.३)

जल-वाह=बादल। (पं. ४) जौन्ह कौ पय=ज्योत्स्ना रूपी दूध। जलद-अहिनी=जलद रूपी सर्पिणी। (पं. ६) गिरा=सरस्वती। (पं. ७) बिरमी=कुछ क्षण के लिये ठहर कर। (पं. ६) मकरी=मछली। (पं.११) बूझती-सी।=समझती-सी।

पृष्ठ २१ (पं. २१) हहरै=काँपकर। (पं. ४) उपल-दल=पत्थरों के समूह पर। (पं.७) अहि-सर्प। (पं.८) बिस=विष। पगारत=फैलाता है। (पं.६) वय-प्रथम=यौवन। सिदौसे=शीघ्र। मौंसे=मेरे समान। पौसै=पौषितकिया। (पं.१०) थापती-स्थापित करती है!

पृष्ठ २२ (पं १) जरन=जलन। (पं २) तल्य=शैया। (पं.३) जीह-जिव्हा। (पं.४) तुलसी सौन-सोही तुलसी=तुलसी और स्वर्ण। (पं.५) नै=नदी। (पं. ६) वादि=व्यर्थ-वचन। निज वदन=अपने ही मुँह। (पं.७) जिह=जिव्हा।

पृष्ठ २३ (पं.२) उपधान=तकिया-सहारा। (पं.५) बहोंलिनि=बाहों में। बिथुरै=बिखरे हुए बालों वाला। (पं.८) सृत=निकली हुई। (पं. ११) आहिं=हैं।

पृष्ट २४ (पं० ५) गहिर=गंभीर। (पं० ७) तरनि=नौका। (पं० ११) गहरि=विलम्ब।

पृष्ट २५ (पं० ३) सिखि=मयूर। (पं० ५) रतन=रत्नावली। (पं० ६) रोहित = मिलाते हुए। (पं० ७-८) रतन... छीन=जिन आँसुओं को रत्न के समान मैंने आपके

लिये सहेज रक्खा था, और कभी बहने नहीं दिया, आज तो वह समस्त रत्नाकर [रत्नावली] ही विरह रूपी अगस्त्य के पान से क्षीण हो गया है। (पं० १०) हीतल=हृदय तल।

पृष्ट २६ (पं० ६) सुमन=पुष्प और अच्छा मन।

पृष्ट २७ (पं० ३) आन=अन्य। (पं० ८) थिर=स्थिर। टेँटि=टेँटुआ, गर्दन। (पं० ६) बात = वायु। सिहात=काँपता है। (पं० १०) रुझत=उलझना। निदरत त्रास=दुःख को हटाते हुए। (पं० ११) रहसि=रहस्य। (पं० १२) दुःख विभव...कौंधि=वेदना के ऐश्वर्य की भावना में ही कल्याण की भावना जागृत होती है।

पृष्ट २८ (पं० २) सेत=सेतु, पुल। (पं० ४) बीन बर=श्रेष्ठ वीणा। (पं० ७) बूरि=डूबकर। अमिय की मूरि=अमृत की मूल।

पृष्ट २९ (पं० १) पटतर=समता, उपम ।। (पं० २) सर-समीरन-वाह=प्रचण्ड वायु का प्रवाह। (पं० ४) हौन=हवन। (पं० ५) पोसत=पोषण पाकर। (पं० ६) पावत=प्राप्त करता है। (पं० ८) तरै=तले में। तूमार=समूह।

पृष्ट ३० (पं० ५) सब ही सर्ग=सम्पूर्ण रूप से। (पं० ६) हित=प्रेम। (पं० ७) सिरातौ=ठण्डा होता हुआ। (पं० ६) सतविरह कौ=विरह का सत्य। (पं० १०) फुरि=सचमुच।

पृष्ट ३१ (पं० ३) ·नयीप=प्रणयी-पति। (पं० ७) कोद=दिशाओं में। पयोद=बादल। (पं० ६) खूँदै=आतुर अश्व की गमनोत्सुक उछाल। (पं० १०) गैन=गजेन्द्र। (पं० ११) करका = ओलों की भयानक वर्षा। (पं० १२) मेचक = चीर।

पृष्ट ३२ (पं० १ होर=होड़, स्पर्द्धा। (पं० ३) बरवा=बड़वाग्नि। बुरानी=डूबगई। (पं० ७) तिमिर-तस्कर=अधकार रूपी चोर। (पं० १०) बित छुद्र=क्षुद्र सम्पत्ति [कहीं-कहीं चमकने वाले तारों को लुटता देख कर] (पं० ११) उत्ताल=ऊँची।

पृष्ट ३३ (पं० १) छेप=क्षेप। (पं० २) स्मिरति-छत=मृत्यु जिसकी मूल है ऐसे मनुष्य के स्मृति के घावों पर अमृत जैसा मरहम लेप करके। (पं० ४) ढाँकि=ढक कर। (पं० ६) बहु'र...जान=जो क्षण पहले युग युग के समान बीतते जान पड़ते थे। (पं० ७) परन सो हो फेरि= किन्तु फिर वही नहीं होते। (पं० ८) बेरि=विलम्ब।

पृष्ट ३४ (पं०२) बिरहिनी···कंदन=विरहिणी के लिये हाथों में किंकिनी रुनो कैंची लिये। कंदन=कैंची। (पं०३) पौन हू कौं रौन=पवन को भी रमणशील करके। (पं०५) उतपति जगत की=जगत की समस्त उत्पत्ति। (पं० २) धरनि=पृथिवी। पैज=प्रतिज्ञा।

पृष्ट ३५ (पं०१) मावस=अमावस्या। पावस=वर्षा। जिस वर्षा में विवश-पूर्णिमा की रात्रि भी अमावस्या दिखाई देती

है। (पं० २) बरहि=मयूर। (पं० ५) स्याम····· परमान=काले बादल जैसे बालों वाली युवती वर्षा। (अब बूढ़ी हो चली उस) के बुढ़ापे के प्रमाण स्वरुप आकाश-भूमि में (वे ही बाल) श्वेत मन के समान बादल (बनकर) उड़ रहे हैं। (पं० ६) अगहन=मास का नाम और जो ग्रहण करने योग्य न हो। कहन कौं=कहने भर को। (पं०१०) पोसनगात=पोषण प्राप्त करता है-पलता है। पूसन=सूर्य। (पं० ११) द्यौस=दिवस। पौस-पौष मास। ओस ही कौ पंथ=ओस का मार्ग ग्रहण करता है। (शीघ्र बीत जाता है) (पं० १२) गहर-विलम्ब।

पृष्ठ ३६ (पं०२) सपदि=शीघ्र। (पं०३) होर=होड़, स्पर्द्धा। (पं० ७) जरठ=वृद्ध। (पं०११) अटवि=जंगल। (पं०१२) गदराइ-पुष्ट हो गए।

पृष्ट ३७ (पं०१) पत्तो=सतह। (पं० २) प्रत्न=प्राचीन। (पं० ६) बावन···विरहवै=विरहरुपी वामन के साढ़े तीन पाँव के समान।

पृष्ट ३८ (पं० ३) सासना=अनुशासन, ताड़ना। (पं०६) कनीनिन=कनीनिका।

पृष्ठ ३६ (पं०१) उसाम्बर=उषा-रूपी वस्त्र। बार=बाल। (पं० ४) बगरन=फैल रहे हैं। (पं० ६) राति=रात्रि।

पृष्ट ४० (पं०१) सरत-चलता। (पं० ८) उतदुरी···रैन=रात्रि (रुपी प्रियतमा) लजाकर अन्तःपुर में छिप गई।

हरम=अन्तपुर। (पं०६) धौर=तरीका।

पृष्ट ४१ (पं० १) चौरे=चबूतरा। ओप=आभा। (पं० २) औचित चोप=चित्त में उत्साह। (पं० ७) जोय=स्त्री। (पं० १०) हीतल=हृदय स्थल। (पं० १२) निपट... मैं राम=रूप के अभाव में भगवान राम का निवास (भक्त के) भाव ही में तो रहता है।

पृष्ट ४२ (पं० ३) चाय=उत्साह। (पं० ६) गुहार=पुकार। (पं० ६) सपदि=शीघ्र। (पं० ११) बेर=समय। (पं० १२) अतिथई=आतिथ्य।

पृष्ट ४३ (पं० ३) जगन=यज्ञोपवीत। (पं० ४) त्रिबुधापगा=गंगा। (पं० ६) चारु=सुन्दर। (पं० ७) अच्छ-मारा=अक्ष-माला। (पं० ८) सींव = सीमा।

पृष्ट ४४ (पं० ३) अवगाहि=अवगाहन करके। पं० ६) दार=स्त्री। (पं० ११) सौर=स्थान।

पृष्ट ४५ (पं० १) सेत-सारी=श्वेत साड़ी में सारी-काय=सम्पूर्ण काया को। (पं० ३) उन-मन=उन्मन, नाराज।

पृष्ट ४६ (पं० ४) दुरती = छिपती है।

पृष्ट ४७ (पं० ३) अध्यते=ध्यान किया हुआ। (पं० ४) तरुनता-नत...सेत=विरह-सरिता के लिये सेतु के समान पति का तारुण्य से भरा हुआ चन्द्रमुख। (पं० ५) सुमुख... तौलन=उस मुख को प्रत्यक्ष [आँखों के सामने] और परोक्ष [हृदय में] परखने के लिये बार २ आँखें खोल कर देखती है। (पं० ६) लहत ही.....सेत=चित्त में

चेत आते ही रेत का बना हुआ धैर्य-सेतु ढह पड़ा। (पं० १०) हित-हेत=प्रेम के कारण। (पं० १२) द्रुम-करसी=वृक्ष-शाखा सी। पाद-पंकज पाहिँ=चरण-कमल पास।

पृष्ट ४८ (पं० १) छिटकि...अन्न=अंचल में भरा हुआ भिक्षान्न छिटक कर पृथ्वी पर फैल गया। (पं० ३) छदम=छिपाव, छल। (पं० ४) अजुगत ऐन=यह बिल्कुल अयुक्त क्या करती हो? (पं० ७) पूजैं=पूर्ण करने के।

पृष्ट ४९ (पं० २) गुनि=ध्यान करके। (पं० ४-५) उठहु देवो!...मूखै मानि=हृदय के भावों को मिथ्या समझ कर कोई शत्रु या मित्र मेरे चरणों की सेवा करते देख तुम पर दोष आरोपित कर सकता है। (पं० ७) पाय चित की चाय=चित्त की चरम चाहना को पाकर। (पं० ८) खुद कहौ सांत-भाय=सत्य भाव से खुद कहिये। (पं० ९) लहन...जौलाज=अपने पति की चरण-भक्ति के लिये भी यदि जन-समाज की दृष्टि में लज्जा का भागी बनना पड़ता हो। (पं० ११) सिकारौ=स्वीकार करो।

पृष्ट ५० (पं० ८) पै,न तिय...उद्योति=किन्तु अबतिय-गत-प्राण तुलसी का प्रकाश नहीं रहा, [अब तो राम-गत-प्राण तुलसी का प्रकाश है।] (पं० ९) अश्रुकन...मोर=नेत्रों के अश्रुकणों का मूलधन भी अब मेरा नहीं है। (पं० १०) रतनगुनि...ठौर=उनको रत्न समझ कर

मैंने सयत्न राम के चरणों में विनियोग कर दिया। (पं० १२) हिम...प्रमान=हिम-तुषार से आच्छन्न पवित्र प्रातः कालीन कमल के समान।

पृष्ट ५१ (पं० २) कल-कपोल...लोल=गालों को सुन्दर तराजू पर आँसुओं के सुन्दर बहुतेरे गोल बाँट आ गिरे हों। ढरै=गिरे। (पं० ३-४) देखितउ .पांति=यह देख कर कि वेदना का पलड़ा फिर भी भारी है और तुलने में नहीं आता, दृग-पंसारी ने अपने सारे बँटखेर एक के बाद एक तराजू के पलड़े पर पटक दिये। (पं० ८) तौ=तब। ससि-कांत सिल की भांति=चन्द्रकांत शिला के समान। (पं० ६) सरल-कर-निकर=शीतल किरणों का समूह। (पं० १०) भाइ=भाव।

पृष्ट ५२ (पं० ५) छार=राख, नष्ट। (पं० ७) पति-अद-अनत=पति पद से अन्यत्र। (पं० ८) लेहुसंग...छाँहि=वन या घर, साथ ले लीजिये, जहाँ कि आपके पद-पद्म की छाया हो। (पं० ६) नीरद-भीर-सै=बादल-दल से गम्भीर। (पं० १०) गिरा=वचन।

पृष्ट ५३ (पं० २) पर=प्रणीत, निर्मित। (पं० ६) पार=आगे, अन्यत्र। (पं० ८) निरत हरिपद=हरिपद में जो निरत हैं। (पं० ११) अगम्य...कौन=मनुष्य के मन के रहस्य और उसकी गति-मति अगम्य है।

पृष्ट ५४ (पं० ३-४-५) लेखि...झम्प=कांचन-कांति से स्त्री-कुल को इस प्रकार लांछन से अभिशप्त होते देखकर, रत्ना-

वली के हृदय में विषम ऊष्मातप्त होकर उसे भस्म करने लगी, ज्वालामुखी के प्रक्रमण-सा झँझावात प्रकटित होने लगा। (पं० ८) समुझि...बेचैन=अपने आपको बिना समझे दूसरों को समझने के लिये बेचैन क्यों होते हो ? (पं० १०) समुझि...सौपान=परमात्म-माहात्म्य प्राप्त करने की प्रथम सीढ़ी है। (पं० ११) बिरथ=व्यर्थ। (पं० १२) मन-प्रतारन-सोग=मन की प्रतारणा का शोक।

पृष्ट ५८ (पं० २) आँहिँ=है। (पं० ४) लौन=सुन्दर। (पं० ५) चिकुर-मेचक भार=बालरूपी अन्धकार का समूह। (पं० ६) सुचित=चेतनावान। (पं० ८) सीठि=सृष्टि। (पं० ६) तैग=तलवार। (पं० १०) अयस-पावस-सरवरी-सौ=अपयश से भरी हुई अमावास्या की रात्रि के समान। (पं० ११) रसमि=रश्मि। (पं० १२) नारि-मूरति-पीन=स्थूल नारी मूर्ति।

पृष्ट ५६ (पं० १) फनिनि=सर्पिणी। (पं० ११) रुचिर...प्रकटात =रात्रि के परिवेश को सँवार कर वह ऊषा के रूप में प्रकट करता है। (पं० ६) तरनि=सूर्य। (पं० १०) पटतर=उपमा।

पृष्ट ५७ (पं० १) नेरे=निकट। (पं० ७) लुकत=छुपते हैं। उलुकन=उल्लुओं से। (पं० ८) दुतिहेत पारत सोक=प्रकाश के लिये शोक मनाते हैं। (पं० १०) बावरि=पगली।

नागिनी..ऐन=सर्पिणी को तुम सुन्दर रस्सी समझती हो।

पृष्ट ५८ (पं० १) चरम=चर्म। (पं० २) चरम-चख-पर=चर्म चक्षुओं से परे। (पं० ८) देह-पुरतौ गनत जुरतौ=जो देह तक ही जुड़ा हुआ समझते हैं। (पं० १२) मानस =मन, रामचरित मानस।

पृष्ट ५९ (पं० ५) हेंतर=हृदय-तल। हेम=स्वर्ण। (पं० ८) धौल=धौलधप्पा, धोखा। (पं० ९) जगत...प्रानु= संसार में जो भी जड़-चेतन दिखाई देता है वह सब चैतन्य स युक्त है। (पं० १०) बनत...भानु=जिन परमाणुओं से सृष्टि बनती है, उनमें शत-शत सूर्यों की शक्ति निहित है। पं० ११) फुरि=सत्य।

पृष्ट ६० (पं० १) गिल...नाहिँ=शक्ति को निगल नहीं सकती। (पं० २) ताहि...आहिँ=शक्ति का समुच्च संचय ही तो अक्षय ईश्वर है! (पं० ३) निरीसुर=निरीश्वर। घृन्य=घृणा के योग्य (पं० ८) चिन्ता-ऐन=चिन्तायुक्त। (प० ११-१२) सजल कोट = सजल बादलों में कड़क कर कहीं विस्फोट करने वाली बिजली के समान रत्नावली की, दृग तारा तुलसीदास के हृदय-दुर्ग की कोट के लिये (वैसीही) हुई।

पृष्ट ६१ (पं० १) खर-बात = तीखी बात, तीव्र-वायु। (पं० ८) चौरे-चबूतरे पर।

पृष्ट ६२ (पं० १) बिलग=अन्यथा। प्रजारन-जोग=जलाने योग्य।

कपार=तकदीर। (पं० २) भूस-दव=भूसे की अग्नि के समान। (पं० ६) छाँडिप्रभु ! भवदीय-पद=आपके चरणों को छोड़ कर। (पं० १०) समहु=शमन कीजिए।

पृष्ट ६३ (पं० २ भ्रम-उदवास=भ्रम का निष्कासन। (पं० ३) गहबर=गद्गद। (पं० ५) बदति=कहती हो। (पं० ६) रजक-रासभ=धोबी के गधे के समान।

पृष्ट ६४ (पं० १) पुजांत बृन्द=यत्रनार्यस्तु पूज्यतेरमते तत्र देवता:। (पं०११) निग्रह=दमन, निरोध। बिग्रह=झगड़ा।

पृष्ट ६५ (पं० १) ईस=शिव। (पं० २) कदन=नष्ट। (पं० ३) तमचुर-तूर=ताम्रचूर (मुर्गा) रूपी तूर्य (तुरही)। (पं० ४) धरत=पकड़ लेता है। सूर=सूर्य। (पं० ६) असि-सिखा कर=उसकी शिखा मानों हाथ में तलवार है! (पं० १०) परत-रांव-पथ=सूर्य के रास्ते में पड़ते ही (सूर्य ग्रहण के समय)

पृष्ट ६६ (पं० १) लहन...धाय=इसलिए सहज ही पवित्र ऐसा प्रकाश पाने के लिये जो दौड़ कर तम का हरण करले। (पं० ३) छाग=अनजान। (पं० ४ प्रत्न=पुराना।

पृष्ट ६७ (पं० ३) रुदनारुन=रुदन से लाल। जोह=देखकर। (पं० ११) उपकूल=किनारे। (पं० ८) बोचि=लहरें।

पृष्ट ६८ (पं० ३) सैबार=शैवाल। (पं० ६) धौत=धुले हुए। (पं० ११) उनयौ=उदय होता हुआ। (पं० १२) अतनु=बिना शरीर का कामदेव।

पृष्ट ६९ (पं० २) टूटि-जिहगी=क्या टूट गई। (पं० ११) संक्रोनु=संकमण, छूत।

पृष्ट ७२ (पं० ६) से त=मुफ्त। (पं० १०) आरि=हठ, आग्रह

पृष्ट ७३ (पं० १) सुचिता=पवित्रता। (पं० ७) लूक=उल्का। (पं० १०) सौर-घर=सौर-मण्डल।

पृष्ट ७५ (पं० २) बाम-कर=स्त्री के हाथ। (पं० ६) जाया=नारी, स्त्री।

पृष्ट ७६ (पं० ३) कोरि=करोड़ों।

पृष्ट ७७ (पं० ५) नौन=नमन, नमस्कार।

तुलसीदास का शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	४	ही कै गौन	ही कै भौन
५	२	बर	बरु
६	६	उत्तर	उतर
७	१	मोटि	मेटि
१६	२	रद्र	रुद्र
१६	११	तर-दाह	तरु-दाह
२३	५	बहोंनिनि	बहोंलिनि
२५	३	गिरि	घिरि
२८	६	गुर	गुरु
२६	६	पावन	पावत
३३	५	टाँकि	ढाँकि
३६	१	सुरमा	सुरसा
४३	३	जगत	जगन
४३	६	चार	चारु
४६	४	दुरति	दुरती
४६	१२	बर	बरु
५६	७	उसा	ऊसा
५६	३	पातर	पीतर
६०	२	धृन्य	घृन्य
७०	१	द्भूत	उद्भूत
७७	३	उनमोची	उनमोचि
७८	१	ध्रव	ध्रुव